जाटवीर

सुखबीर सिंह दलाल

जाटवीर

(क्षत्रिय वंशोत्पन्न जाटवीरों की कथाएं)

लेखक
श्री सुखवीर सिंह दलाल
एम. ए. (हिन्दी), बी. एड., पत्रकार
भूतपूर्व सम्पादक - मानव-वन्दना (मासिक)
State Award Winner, Delhi

प्रकाशक

मधुर-प्रकाशन

दिल्ली-110006

प्रकाशक :
राजपाल सिंह शास्त्री
अध्यक्ष, मधुर-प्रकाशन
2804, गली आर्यसमाज,
बाजार सीताराम, दिल्ली-110006
फोन : 3238631, 7513206

प्रथम संस्करण : मार्च 1997
मूल्य : 35.00
ISBN : 81-85269-27-0

आवरण :- प्रेम नारायण

JAAT VEER
Writer : Sh. Sukhveer Singh Dalal
Price : 35.00
Madhur Prakashan,
2804, Gali Aryasamaj, Bazar Sitaram, Delhi-6

लेजर कम्पोजिंग एण्ड प्रिंटिंग : तिलक प्रिंटिंग प्रेस, 2046, बाजार सीताराम, दिल्ली-110006 फोन : 3231369

वास्तविकता प्रत्यक्ष (सच्चाई सामने)

२०४८ वर्षों के अन्तराल में उत्पन्न अनेकानेक जाटवीरों ने भारत की वीरभोग्या वसुन्धरा की गोद में जन्म लिया। उन [illegible] जातीय वीरों की शिरोमणि-नर नाहर-मण्डित माला से प्रखर प्रदीप्त प्रमुख कतिपय शूरवीर, धर्मधुरीण, दानवीर पुरुषों का जीवन वृत्त "जाटवीर" पुस्तक में शिक्षावित् शिक्षित जगत में पुरस्कृत मननशील मनस्वी, मनिषी चौधरी सुखवीर सिंह दलाल एम. ए., बी. एड. ने निबद्ध कर जाति का गौरव प्रस्तुत किया है।

जिस जाति के आदर्शों, उदात्त धारणाओं, भावनाओं, निष्ठाओं के सम्बन्ध में देश-विदेश के इतिहासज्ञों, नेताओं, लेखकों के तथ्यों, मन्तव्यों से युक्त उद्धरणों से पुस्तक समन्वित है।

१. इन्द्रप्रस्थ का दिल्ली नाम जिनके नाम से सम्बोधित हुआ तथा महाराजा विक्रमादित्य के सेनापति दिलेराम, २. महायाज्ञिक, दानी, कुशल प्रबन्धक, राज्य विस्तारक थानेसर अधीश्वर संम्राट हर्षवर्धन, ३. ईश्वर-भक्त तथा महायोद्धा लोक वीर तेजा जी, ४. ईश्वर विश्वासी हठयोगी धन्ना भगत जाट ५. जाति, धर्म पर अंग-अंग कटा देने वाले गोकुला जाट, ६. औरंगजेब का मुकाबला करते-करते रणभूमि में वीरगति प्राप्त करने वाले, वीर शिरोमणि राजाराम, ७. मुस्लिम शासकों, मराठों से नीति पूर्वक बरतने वाले चूड़ामन, ८. महा अत्याचारी क्रूर औरंगजेब से लोहा लेकर गोहद और ग्वालियर के शासक महाराजा भीम सिंह राणा, ९. गोहद और ग्वालियर के शासक धोखे से विष देने से मृत्यु का वरण करने वाले महाराजा छत्र सिंह राणा, १०. ग्रामीण जनता में सरल कविताओं से आध्यात्मिक प्रचारक सन्त कवि गरीब दास, ११. आगरा जिले को,

ताजमहल को, सिकन्दरा को लूटकर फिर कब्र से अकबर की हड्डियों को अग्निसात् करने वाले रण बांकुरे, नीति निपुण महाराजा सूरजमल, १२ पिता के घातक से बदला लेकर दिल्ली के लाल किले के बादशाह से भेंट में उसकी बेटी, हीरे जवाहरात, घोड़े-हाथी से सम्मानित महाराजा जवाहर सिंह १३. अंग्रेजों के अवरोधक दिल्ली के प्रबन्धक, बहादुर शाह के दायें हाथ बल्लभगढ़ नरेश नाहरसिंह १४. जाटों के भामाशाह, आर्य दानदाता, सेठ छाजूराम १५. पंजाब के आक्रान्ता—— मुसलमानों से मुक्त कराने वाले पंजाब केसरी महाराजा रणजीत सिंह १५. सैकड़ों जाटों को उपदेशक बनाने वाले, मोही के निर्मोही, हैदराबाद को धार्मिक मुक्ति दिलाने वाले, महासागर के सेनानी, सिद्धान्तों में लोहपुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती, १६. भारत के समस्त किसानों के उद्धारक, संगठनकर्ता, नीति निर्देशक किसान बन्धु चौधरी छोटूराम १७. ग्रामोत्थान प्रणेता स्वामी केशवानन्द जी, १८. देश की स्वतन्त्रता के लिए तथा परिवार मोह त्यागी, विदेशों में अपने देशवासियों में जागृति कर्ता सरदार अजीतसिंह १९. कर्मठ सुधारक कई एक गुरुकुलों के संस्थापक बलिदान होने वाले भक्त फूल सिंह, २१. सर्वप्रथम राज्य, राज्य सुखभोग त्यागी देश-विदेश में देशभक्तों के पथ प्रदर्शक राजा महेन्द्र प्रताप, २१. राजस्थान में पीड़ित जाटों को सम्मान दिलाने वाले चौधरी बलदेवसिंह मिर्धा, २२. भरतपुर राज्य में सुधार-प्रेरक प्रक्रियाओं के प्रणेता महाराजा कृष्ण सिंह २३. जमींदारों से काश्तकारों को मुक्ति दिलाने वाले फिर उन्हीं को भूमिधर बनाने वाले प्रधानमंत्री चौधरी चरणसिंह २४. क्रान्तिकारियों के अग्रनेता अंग्रेजों को आतंकित कर हंसते-हंसते फांसी को गले लगाने वाले वीर पुंगव सरदार भगतसिंह २५. भरतपुर राज्य के जनमन चहेते, अपने राज्य की आन-मान-शान के झण्डे के लिये प्राणों की आहुति दाता राजा मानसिंह आदि-आदि नर सिंहों, जाटवीरों की जीवन गाथा प्रस्तुत करने वाली पुस्तक में इन वीरों के भावनाओं, संकल्पों,

उद्देश्यों कार्यों को उन्हीं के शब्दों में दर्शायां गया है। जिससे आगे आने वाली पीढ़ियों के व्यक्ति उनका अनुकरण कर सकें।

वीरवर जाट नेता गोकुला जाट एवं महाराजा नाहर सिह के अलभ्य चित्र प्राप्त करने में लेखक का प्रयास अतिस्तुत्य है। महाराजा नाहर सिह की फिल्म बनाने में प्रयत्नशील चौधरी दलाल महोदय की भावना को जाति के धनी मानी व्यक्ति सहयोग देकर निकट भविष्य में ही जाति का माथा ऊँचा करने के लिए पूर्ण करेंगे।

पुस्तक की भाषा शैली अति सरल सर्व साधारण जन ग्राह्य है। साज सज्जा आकर्षक है। मनमोहक है। संग्रहीत चित्रों से नेताओं के वर्तमान जैसे दर्शनों से उनकी भांति जाति के सेवा करने की भावनाओं को बल मिलता है। जाति-बन्धु पाठक जहां इसको पढ़कर कृतार्थ होंगे वहां अन्य इतिहास प्रेमी भी जाटवीरों की वीरता का प्रत्यक्ष रूप में साक्षात्कार करेंगे।

लेखक महोदय की कृति सामयिक एवं भव्य भावोद्भाविनी है, परिश्रम की सफलता पाठक इसका आद्योपान्त अध्ययनकर, मननकर, आचरण कर प्रदान करेंगे।

लादूराम जेवलिया
अध्यक्ष
जाट समाज नोहर
हनुमानगढ़ राजस्थान

समर्पण

मैं
अपनी इस कृति को
तपस्वी मानवता प्रेमी
चौधरी करनसिंह दलाल
पूज्य पिता जी के
चरणों में समर्पित
करता हूँ।

— सुखवीर सिंह दलाल

प्राक्कथन

किसी भी जाति की उन्नति उस जाति में उत्पन्न महापुरुषों द्वारा होती है। प्रत्येक जाति का जनसमूह प्राचीन गौरवपूर्ण गाथाओं को सुनकर या पढ़कर प्रभावित होता है। अपने पूर्वजों के महान कार्यों द्वारा ही चरित्र निर्माण होता है। इतिहास शून्य जातियाँ न कभी उठी हैं और न उठ सकती हैं। जाट जाति का गौरवशाली इतिहास रहा है। इसने अनन्त विभूतियों को जन्म दिया है। उन अमर विभूतियों को, जो इतिहास ने उपेक्षित कर रखी है, को प्रकाश में लाना ही इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य रहा है।

इस पुस्तक में 'जाट शब्द' की व्युत्पत्ति, 'विदेशी व पाश्चात्य मनीषियों की दृष्टि में-जाट' शीर्षक से लिखे लेख विशेष पठनीय हैं। इन लेखों से पाठक स्वयं जाटों की महानता, शौर्य, सहिष्णुता, साहस व त्याग की भावना से ओतप्रोत को परख सकेंगे। पाठक इस पुस्तक में दी गई गाथाओं से जान सकेंगे कि जाटवीर कुशल शासक, शिक्षा शास्त्री, राजनीतिज्ञ, युद्ध कौशल में निपुण होने के साथ-साथ साहित्य और संस्कृति के संरक्षक भी रहे हैं।

इस पुस्तक में कुंवर नटवर सिंह जी, डाक्टर विजयेन्द्र स्नातक जी, डाक्टर नत्थन सिंह जी, श्री राम सिंह जी फौजदार व उनके प्रतिभाशाली सुपुत्र श्री राजेन्द्र सिंह जी फौजदार, श्री नरेन्द्र जी वर्मा और श्री सुरेन्द्र सिंह जी के लेख भी लिए गए हैं। इन लेखों से पुस्तक में चार चांद लग गए हैं। मैं इन सभी महानुभावों का हृदय से आभारी हूँ और आशा करता हूँ कि आप भविष्य में भी सहायता करते रहेंगे।

जाट समाज, आगरा, सूरज सुजान, दिल्ली व मधुर लोक जैसी लोकप्रिय पत्रिकाओं के सम्पादकों को भी धन्यवाद देता हूं, जो समय-समय पर मार्ग-दर्शन करते रहे। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक के लिए जिन-जिन पुस्तकों तथा लेखों से सहायता ली गई, उनके लेखकों का भी आभारी हूँ। श्री महेन्द्र कुमार जी शास्त्री और राजपाल जी शास्त्री का विशेष आभारी हूँ कि आपने पुस्तक लिखने की प्रेरणा दी।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि "जाटवीर' पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ने पर प्रत्येक पाठक के हृदय में देश भक्ति, साहस, वीरता और मानवता के प्रति समर्पण की भावना उत्पन्न होगी।

सुखवीर सिंह दलाल,
होटल वन्दना, पहाड़ गंज
रामनगर नई दिल्ली 55

दशहरा
18 सितम्बर, 1991

जाटवीर

जाटवीर

'जाट' शब्द की व्युत्पत्ति

'जाट' शव्द की व्युत्पत्ति के संबंध में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ लिद्वान् 'जर्त' शब्द से जाट की व्युत्पत्ति मानते हैं। 'जर्त' शव्द कबीले, वंश या कुल का बोधक है।

अन्य विद्वानों का मत है कि 'जात' से जाट शव्द बना। ठाकुर देशराज जी के अनुसार, ''सिक्खी को धारण करने पर जैसे सिख कहलाते हैं, उसी प्रकार जाति (राष्ट्र) के अनुयायी जाट (जात) कहलाते हैं।'' आर्यपथिक पं० लेखराम ने लिखा है, ''अन्य देशों और भारत की भाषाओं में अदल-बदल होता है और फार्सी में भी संस्कृति की जाति का जाद, जात बन जाता है। .... बस बाज सरहदी मुलकों में ..... जातों का जाटों बन जाता है। अरबी साहित्य, जिसमें २७ मशहूर गजंवाता (लड़ाइयां) होने का वर्णन हैं। उनमें से एक गजवा (लड़ाई) जात (जाद लोगों से भी हुई थी जो गजवा जर्तुरिंका के नाम से मशहूर है। वह वे जात थे जो अरब के पड़ोस में अपना प्रभाव जमा चुके थे।)''

जाट अपने वंश की उत्पत्ति शिवाजी की जटाओं से मानते हैं। पौराणिक कथा के अनुसार पार्वती के पिता दक्ष ने यज्ञ में शिव जी का अपमान कर दिया। शिव जी ने दुखी होकर अपनी जटाओं को नोंच डाला। जटाओं से गण इत्यादि उत्पन्न हुए। उन्हीं गणों की सन्तान 'ज़ाट' जाति है।

जाट आर्य वंश के हैं या किसी अन्य वंश के, ये बाहर से आए या भारत के मूल निवासीं हैं, इस संबंध में भी विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। श्री सुखसम्पतराय भंडारी ने 'भारत के देशी राज्य' नामक ग्रन्थ में लिखा है, "जाट आर्य वंश के हैं और प्राचीनकाल में भारत में उनकी बस्ती होने के ऐतिहासिक उल्लेख मिलते हैं। यह भी पता चलता है कि उस समय ये (अन्य) क्षत्रियों की भांति उच्च वंशीय माने जाते थे किन्तु सामाजिक मामलों में अधिक उदार होने का कारण ये (पिछले जमाने के) ब्राह्मणों की आंखों में खटकने लगे और उन्होंने इनका जातीय पद गिराने का प्रयत्न किया।" मिस्टर **नेस्फील्ड** ने भी जाटों को आर्य मानते हुए कहा है, "सूरत शक्ल कोई समझे जाने वाली चीजें हैं तो जाट सिवा आर्यों के और कुछ नहीं हो सकते हैं।"

राहुल सांकृत्यायन ने 'साम्यवाद' ही क्यों? नामक पुस्तक में जाटों को बाहर से आया हुआ बताते हुए लिखा है, "आरम्भिक आर्यों के बाद भी सिकन्दर के समय हजारों यूनानी सिथियन (मग-शक) जाट, गूजर, आभीर आदि जातियां भारत में आती गईं और उत्तर भारतीय आर्यों में मिलती गईं।"

अतः जाटों के विषय में, इन सब उद्धरणों के आधार पर यही कहना पड़ेगा कि जाटों के रीति-रिवाज, शक्ल-सूरत इत्यादि सभी वैदिक आर्यों से मिलते हैं। जाट आर्यों के ही वंश के हैं। इस संबंध में ई० बी० हेवल की पंक्तियां भी दृष्टव्य है, "भारतीय आर्य जाति जिसके कि वंशधर आज राजपूत, खत्री और जाट हैं, पंजाब, राजपूताना और कश्मीर में बसी हुई हैं। यह जाति प्राचीन आर्य जाति से बहुत मिलती जुलती है, जो भारत में आकर बसी थी।"

जाट अत्याधिक साहसी, निर्भीक, हृष्ट-पुष्ट होते हैं। परिश्रम में वे किसी से पीछे नहीं। डा० विररेटन के अनुसार, "वे साहसी होते

हैं, अपनी रीति-रस्मों का दृढ़ता से पालन करते हैं। उनका शरीर

स्फूर्तिमान और सुगठित होता है।"

जाट खेती और तलवार—दोनों के धनी हैं। उन्होंने शास्त्री जी के नारे **'जय जवान, जय किसान'** को सार्थक कर रखा है। श्री कालिका रंजन कानूनगो ने 'जाटों का इतिहास' नामक पुस्तक में लिखा है, "वे कृषि और तलवार चलाने में एक बराबर दिलचस्पी रखते हैं और इस ओर यहां तक उन्नति की है कि मेहनत और हिम्मत में भारत की कोई अन्य कौम इनके बराबर नहीं है। डील डौल में वे राजपूतों और खत्रियों से समानता रखते हैं और भारत के पुराने आर्यों से बहुत मिलते जुलते हैं।.... पंजाब की तमाम कौमों से यह कौम बहुत उतावल और व्यक्तिगत स्वतंत्रता चाहने वाली है।..... एक जाट करता वही है, जिसे वह ठीक समझता है। वह स्वतंत्र और खुदपसन्द है।"

"जाट सरलता पसन्द है। उसमें कृत्रिमता को स्थान नहीं। उसमें भोलापन भी है। जाटों में आज भी एक अल्हड़पन से युक्त वीरता और भोलेपन में मिश्रित उद्दण्डता विद्यमान है। उन्हें प्रेम से वश में लाना जितना सरल है, आंखें दिखलाकर दबाना उतना ही कठिन है। धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से वे अन्य हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक स्वाधीन हैं और सदा रहे हैं। लड़ना उनका पेशा है। मनमानी करने में और अपनी आन की खातिर में अपना घर बिगाड़ देना या जान को खतरे में डाल देना, जाट की विशेषता है।"

जाट अपने आप को 'चौधरी' कहलवाना अधिक पसन्द करता है। वह वैदिक धर्म का पालक है, न कि पौराणिक धर्म का। अन्त में, जाट जाति के विषय में सर डार्लिंग के शब्दों में यही कहा जायेगा कि, "सारे भारत में जाटों से अच्छी ऐसी कोई जाति नहीं है, जिसके सदस्य एक साथ कर्मठ किसान और जीवन्त जवान हों।"

जाटों के विषय में प्रचलित कहावतें

"हुई मसल मशहूर विश्व में, आठ फिरंगी नौ गोरा।
लड़े किले की दीवारों पर खड़े जाट के दो छोरा।।

— प्रसिद्ध मसल

"यही भरतपुर दुर्ग है, दूसह दीह भयकार।
जहं जट्टन के छोहरे, दिए सुभट्ट पछार।।"

— कवि वियोगी हरि

"जाट सोई जो पांचों झटकैं,
खासी मन स्यों निशदिन अटकैं।"

(अर्थात् जो पांचों इन्द्रियों का दमन करके, बुरे संकल्पों से दूर रहकर भगवद्भक्ति करे वही वास्तव में जाट है।)

— संतकवि गरीब दास

"आठ फिरंगी नौ गोरे लड़े जाट के दो छोहरे।"
"कविता सोहे भाट की खेती सोहे जाट की।"
"जाट मरयौ तब जानियौ जब तेरहवीं हो जाये।"

"यह कौम कीर्तिमान है, विशाल है, महान है।
बहादुरी की शान है, असीम शक्तिमान है।।
यह विश्व दीर्घपाट है, विशाल है, विराट है।
जहां भी एक जाट है, यह कौम विद्यमान है।।

— फीजी के राष्ट्रकवि पं० कमलाप्रसाद मिश्र

"जाट जाट को मारता, यह ही भारी खोट।
ये सारे मिल जायें तो, अजेय इनका कोट।"

— शिव कुमार प्रेमी

भारतीय मनीषियों की दृष्टि में 'जाट'

पार्वती के पूछने पर महादेव जी ने कहा, "ये जट्ट महाबलशाली, अत्यन्त वीर्यवान एवं प्रचण्ड पराक्रमी हैं। सृष्टि के आरम्भ में समस्त क्षत्रियों में यही जाति सर्वप्रथम शासक हुई।" **– देव संहिता (श्लोक १५-१६)**

"जो पांचों इन्द्रियों का दमन करके, बुरे संकल्पों से दूर रहकर भगवद् भक्ति करे, वास्तव में जाट है।" **– संतकवि गरीबदास**

"एक जाट वही करता है, जो वह ठीक समझता है।"

– कालिकारंजन कानूनगो

"चारित्रिक गुण में जाट प्राचीन आंग्ल-सेक्सन तथा प्राचीन रोमवासियों की तरह सहनशील, सोच-विचार कर मन्दगति से आगे बढ़ने वाले, कल्पना, भावुकता तथा तड़क-भड़क होने पर भी दृढ़ विचारक, शक्ति सम्पन्न तथा प्रयत्नशील होते हैं।"

– कालिकारंजन कानूनगो

"जाटों को मुगलों ने परखा, पठानों ने इनकी चासनी ली, अंग्रेजों ने पैंतरे देखे और इन्होंने फ्रांस एवं जर्मनी की भूमि पर बहादुरी दिखाकर सिद्ध कर दिया कि जाट क्षत्रिय हैं।"

– ठकुर देशराज

"जाटों को प्रेम से वश में करना जैसा सरल है, आंख दिखा कर दबाना उतना ही कठिन है।"

– पं० इन्द्रविद्यावाचस्पति

"जाट भारतीय राष्ट्र की नींव है।"

– महामना मदनमोहन मालवीय

".... मैं कहना चाहता हूं कि इस भारतवर्ष में क्षत्रिय के पवित्र

कर्तव्यों को जाटों ने यदि राजपूतों से बढ़कर नहीं तो कम भी पालन नहीं किया।"

— देवतास्वरूप भाई परमानन्द

"मैं यू० पी० के उत्तर तथा पश्चिमी जिलों के जाटों के बारे में जानता हूं। वे मातृभूमि के आदर्शपुत्र, बहादुर, स्वतंत्र स्वभाव वाले तथा बहुत उन्नतिशील हैं।

— भारतरत्न पं० जवाहरलाल नेहरू

"जितने भी आज विश्व-स्तर के कुश्ती चैम्पियन है, उन में ९९% जाट ही हैं।"

— भारत केसरी चन्दगीराम

"शारीरिक लक्षणों, भाषा, चरित्र, भावनाओं, शासन तथा सामाजिक संस्था विषयक विचारों की दृष्टि से आज का जाट निर्विवाद रूप से हिन्दुओं के अन्य वर्गों के किसी भी सदस्य की अपेक्षा प्राचीन वैदिक आर्यों का अच्छा प्रतिनिधि है।"

— कुंवर नटवरसिंह

●

पाश्चात्य मनीषियों की दृष्टि में 'जाट'

"विभिन्न धार्मिक संगठन, सम्प्रदाय अथवा मतों के अनुयायी होने पर भी जातीय अभिमान से ओतप्रोत, परिश्रमी किसान और हल की फार के धनी हैं। भूमि के सफल जोता, क्रान्तिकारी, काश्तकार, मेहनती जमींदार होने के साथ-साथ रणक्षेत्र में भी समान दिलचस्पी रखते हैं।" **– विलियम क्रुक**

"जाटों की भाषा का प्रत्येक शब्द का मूल संस्कृत भाषा से मिलता है।" **– विलियम क्रुक**

"जाटों ने घोड़ों की पूजा जर्मन लोगों में फैलाई।"
– कर्नल टाड

"जिन जाटवीरों के प्रचंड पराक्रम से एक समय सारा संसार कांप गया था, आज उनके वंशज राजपूताना और पंजाब में खेती करके गुजारा करते हैं। **– कर्नल टाड**

"रंगरूप में यदि कुछ समझे जाने वाली कसौटी है, तो जाट आर्यों के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकते।"

"जाट सच्चे क्षत्रिय है।" **– मि० एफ० एम० यांग**

"जाट स्वामीभक्त और साहसी हैं।" **– डॉ० विटरेटन**

"जर्मन लोगों के बिस्तर से उठते ही स्नान करन का स्वभाव अपने शीतप्रधान देश का न होकर भारतीय (जाटों) द्वारा सिखलाया हुआ है।" **– डॉ० टसीटस**

"जाट शब्द की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। यह ऋग्वेद, पुराण और मनुस्मृति आदि अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थों से स्वतः सिद्ध है। इसकी परिभाषा की भी आवश्यकता नहीं। यह तो वह वृक्ष है, जिससें समय-समय पर जातियों की उत्त्पत्ति हुई"।
– ए० एच० बिंगले

जाट जाति के विषय में

"यहां सिरसा के पूर्वोत्तर में स्थित टोहाना नामक गांव पहुंचने पर मुझे लगा कि यहां के निवासी वज्रदेहधारी जाति के हैं और यह जाट कहलाते हैं।..... इन्होंने मुसलमान यात्रियों के हृदय में भय उत्पन्न कर दिया है।"

"जाट एक अत्यन्त मजबूत जाति है। देखने में वे दैत्य जैसे, चींटियों और टिड्डियों की तरह बहुत संख्या वाले और शत्रुओं के लिए सच्ची महामारी हैं।" — **तैमूर लंग**

"जाटों का शारीरिक डीलडौल भारत की प्राचीन आर्य जाति राजपूत तथा खत्री वंशजों से अधिकतर मिलता-जुलता है। प्रकृत स्वभाव तथा शारीरिक रचना के आधार पर ये वैदिक आर्यों के वंशज हैं। प्रायः इनका कद लम्बा, सुन्दर, सुडौल आकृतिं, गेहुंआ रंग, काली तथा तेज आंखें, चेहरे पर घने बाल, मुछहरा मुखमंडल, लम्बा सिर, ऊंची पतली तथा नुकीली नाक, चमकीला तथा चौड़ा माथा, लम्बा-पतला स्फूर्तिवान तथा सुगठित चेहरा, बलिष्ठ भुजाएं और चौड़ी छाती होती है।" — **रिसले (पाश्चात्य विद्वान्)**

"ये भारत की अन्य जातियों से साहस, वीरता, पौरुष, परिश्रम, औद्योगिक विकास से कम नहीं हैं। इसीप्रकार इनको राजस्थान के राजपूत तथा पंजाब के खत्रियों से भी पीछे नहीं कहा जा सकता, बल्कि इनकी मौलिक विशेषताएं भारतीय परम्परा के अनुरूप अति प्रगतिशील हैं। प्रायः यह देखा गया है कि इनके मुकाबले में राजपूत विलासप्रिय, भूस्वामी, गूजर और मीणा सुस्त अथवा गरीब, काश्तकार, झगडालू तथा पशुपालन के स्वाभाविक शौकीन, पशु चराने में सिद्धहस्त हैं, जबकि जाट मेहनती जमींदार तथा पशु-पालक हैं।" — **कनिघंम**

''जाट समाज की महिलायें आर्थिक उत्पादन के लिए कठिन परिश्रम करना राष्ट्रीय धर्म समझती हैं। गूजर, मैना, अहीर अथवा मालियों की तरह एक सच्ची जाटनी धर्म-लोकलाज को आंचल में सजोए खेत-खलिहानों और बागों में स्वच्छन्दता पूर्वक काम करती हैं। खेत जोतने, बोने अथवा काटने में अपने पति-पुत्रों का साथ देती है। वह आलसी जीवन के प्रति मोह नहीं करती।''

— यदुनाथ सरकार

''राजनैतिक रंगमंच पर समान रूप से उत्तरदायित्व निभाना, रणक्षेत्र में पतियों का साथ देना और आपातकाल में अपने धर्म की रक्षा में प्राणोंत्सर्ग करना पवित्र धर्म समझती हैं।'' **— मनूची**

''जातीय सम्मान के विरोध को मौत का संदेश मानता है। समाज की प्रतिष्ठा का प्रश्न आते ही अपने व्यक्तिगत मतभेदों को एक साथ भुला देता है। अपने बुर्जुग सरदार अथवा नेता की आज्ञा को सर्वोपरि मान कर प्रत्येक शक्तिसम्पन्न नवयुवक अथवा कुशल सैनिक एक सूत्र में बंध कर अन्याय अथवा अत्याचार के विरोध में खड़ा हो जाता है।''

''जाट जाति लगभग नौ करोड़ से अधिक संख्या में प्रगतिशील उत्पादक और राष्ट्र-रक्षक सैनिक के रूप में विशाल भूखण्ड पर बसी हुई है। इनकी उत्पादन भूमि स्वयं एक विशाल राष्ट्र का प्रतीक है।'' **— उपेन्द्र नाथ शर्मा (जाटों का नवीन इतिहास)**

''जब ऐसे ही जाटों के से पुरुष हों तो पोपलीला संसार में न चले।'' **— महर्षि दयानन्द सरस्वती**

''मुझे इस बात का भारी अभिमान है कि मेरा जन्म जाट क्षत्रिय जाति में हुआ है। हमारे पूर्वजों ने कर्तव्य धर्म के नाम पर मरना सीखा था और इसी बात के पीछे अब तक हमारा सिर ऊंचा है।'' **— महाराजा कृष्णसिंह (भरतपुर)**

"दिल्ली के आसपास चारों ओर एक ऐसी महान् बहादुर कौम (जाति) बसती है, वह यदि आपस में मिल जाए और चाहे तो जब दिल्ली पर कब्जा कर सकती है।"

— भारतरत्न पं० जवाहरलाल नेहरू

"मौजूदा माहौल में कोई कौम सम्मानपूर्वक जिन्दा नहीं रह सकती, जब तक कि वह अपना संगठन न कर ले। किसानों को और जाटों को यदि उन्नति करनी है, तो उन्हें एकता के सूत्र में बांधना ही होगा।"

— दीनबन्धु सर छोटूराम

"हमारी जाति बहादुर है। देश के लिए समर्पित कौम है। चाहे खेत हो या सीमा, उसे समर्पित रहना है। धरती पुत्र जाटों पर मुझे नाज है।"

— क्रान्तिदर्शी महेन्द्र प्रताप

"एक जाट उतना कल्पनाशील और भावुक नहीं होता, जितना सुदृढ़ और धर्मशाली। शब्द प्रमाण की अपेक्षा उस पर प्रत्यक्ष उदाहरण का विशेष प्रभाव पड़ता है। स्वातंत्र्य प्रियता और परिश्रमशीलता उसके विशेष गुण हैं। उसे अपने व्यक्तित्व का बड़ा ध्यान रहता है। वह स्वजाति सत्ता का समर्थक होने के साथ संगठन कला में भी दक्ष होता है। जाट जिस बात को ठीक समझता है, उसे करने में तुरन्त प्रवृत्त हो जाता है। यद्यपि वह स्वतंत्र प्रकृति का होने के कारण अपनी इच्छानुसार ही सब कुछ कर डालता है तथापि वह उचित बात को सुनने, समझने और तदनुसार काम करने के लिए सदैव तैयार रहता है।"

— कालिकारंजन कानूनगो

जाट महापुरुषों के विषय में कथन

"....इस युद्ध में एक विकट योद्धा था, जिसका नाम राजा दिल्लू उप दिलेराम था, जिसने शकों की धज्जी उड़ायी थी। इसकी वीरता से ही राजेश्वर महाराजा विक्रमादित्य जीते थे।"

— भगवती चरण भाट की पोथी के लेख से

"आरम्भ के छः वर्षों (६०६ ई० से ६१२ ई० तक) में हर्ष ने उत्तरी भारत के पांच राज्यों— पंजाव, कन्नौज, वंगाल, बिहार और उड़ीसा को जीता और उत्तरी भारत में अपनी स्थिति मजबूत की।"

— चीनी यात्री ह्यूनसांग

"हर्ष का प्रशासन निरंकुश तथा लोकतंत्रीय तत्त्वों का मिश्रण था।"

— इतिहासकार डॉ० आर० के० मुकर्जी

"तेजा जी तथा उनके परिवार के लोगों ने बड़ी वीरता तथा साहस के साथ नागौर क्षेत्र में ही नहीं, राजस्थान के कई भागों से नाग लोगों को निष्कासित किया, जन-उत्पीड़न की उनकी क्षमता घटाई और आर्य जाति के लोगों का जान-माल तथा इज्जत की रक्षा की। यही कारण है कि उनको 'लोकदेव' की पदवी दे दी गई। कालान्तर में जनता की यही आस्था पूजा के रूप में परिणत हो गई।"

— डॉ० नत्थनसिंह

"अपनी धर्मनिष्ठता, स्वाधीनता प्रेम, सुयोग्य संगठक, सैन्य संचालन, स्वाभिमानी, निर्भीकता,साहस के कारण उसने (गोकुला) विशाल प्रभाव क्षेत्र बना लिया। वह साहाबाद परगने के उपद्रवग्रस्त गावों का रईस तथा पनाह गांव का प्रमुख व्यक्ति कहलाने लगा।"

— औरंगजेब नामा; भाग-२, पृष्ठ-२०

"स्वाधीनता की भावना से ओतप्रोत किसान हितैषी वीर

शिरोमणि राजाराम के इरादों को डिगाना मौत के भी बस की बात न थी।''
— लेखक

''चूड़ामन दृढ़ तथा भावुक सैनिक की तरह भावुकता को नीति पर विजयी नहीं होने देता था। उसका मस्तिष्क सदैव ठण्डा, क्रोधावेश से दूर रहता था। वीरता और बुद्धिमत्ता इन दो गुणों के मेल ने ही चूड़ामन को इस योग्य बनाया कि जाटों की विद्रोह शक्ति को वह राज्य-शक्ति के रूप में बदल सका।''
— यदुनाथ सरकार (इतिहासकार)

''सन्त गरीबदास जी की वाणी में तत्त्वदर्शन के साथ-साथ काव्यात्मकता का पूरा निर्वाह हुआ है। सन्त जी की वाणी से सिद्ध है कि वे शैव, शाक्त, वैष्णव व बौद्धिक मतों के पूर्ण जानकार थे। सन्त गरीबदास जी की वाणी का अध्ययन करके जीवन को आदर्श बनाया जा सकता है।''
— महन्त दयासागर

''सहचो भले ही जट्टनी जाय अरिष्ट अरिष्ट।
जापर तस रविमल्ल हुव आमेरन को इष्ट।।''

अर्थात् जाटनी के प्रसव की पीड़ा व्यर्थ नहीं गई, उसने ऐसे प्रतापी सूरजमल को जन्म दिया, जिसने आमेर-जयपुर वालों की रक्षा की।
— बूंदी के महाकवि

''टैक्सों की वसूली और सिविल मामलों को निपटाते हुए शासन चलाने की भी गहरी काबलियत और दिमागी पैनेपन में सिवाय आसिफजाट बहादुर (हैदराबाद संस्थापक) के, उस समय के भारत का कोई राजा महाराजा सूरजमल का मुकाबला नहीं कर सकता।''
— तत्कालीन विख्यात पुस्तक इमादुस्सादात'

''ये (महाराजा सूरजमल) १८ वीं शताब्दी के कनिष्क, अन्तिम प्रतापी हिन्दू नरेश थे। श्रीकृष्ण जैसी-नीतिमत्ता, भीम जैसी

दृढ़ता इन्हें प्राप्त हुई थी। इनके दर्शनमात्र से सैनिकों में शूरवीरता,

साहस, ओज, तेज, शक्ति एवं स्फूर्ति का संचार होता था। इन्हीं के प्रताप से जाट देश के राजनीतिक रंगमंच पर उदित होकर भारताकाश में प्रखर सूर्य की भांति चमक उठे।

— प्राचीन राज्यवंश एवं जाट क्षत्रिय इतिहास

"सूरजमल ने अपने पीछे एक ऐसा विस्तृत राज्य छोड़ा था, जहां शक्ति और समृद्धि का शासन था।..... उससे भी अधिक उसने अपना महान नाम छोड़ा जो आज दो सदियों के बाद भी हमें इस प्रकार प्रेरणा दे रहा है, जिस प्रकार छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप तथा महाराज रणजीत सिंह के नाम प्रेरणा दे रहे हैं।

— कुंवर नटवर सिंह

"जहां उसके (जवाहरसिंह) मित्रगण उसे योग्य राजा, साहसी, तड़क-भड़क का प्रेमी और उदार व्यक्ति के रूप में देखते थे, वहीं दूसरी ओर उसके शत्रु उसे जिद्दी, खूंखार, तानाशाह, भूखा भेड़िया तथा अविश्वसनीय छल-कपटी व्यक्ति कहते थे।"

— कानूनगो

"महाराजा रणजीत सिंह पहला भारतीय है, जो जिज्ञासावृत्ति में सम्पूर्ण राजाओं से बढ़ा-चढ़ा है। वह इतना बड़ा जिज्ञासु कहा जाना चाहिए कि मानों अपनी सम्पूर्ण जाति की उदासीनता को वह पूरा करता है। वह असीम साहसी शूरवीर है।"

— जैक्मों (फ्रॉंसीसी यात्री)

"जाट राजा नाहरसिंह के हाथ में जब दिल्ली की कमान रही तब तक अंग्रेज दिल्ली को पूर्णतया अधिकार में नहीं कर सके।"

— गोपाल प्रसाद कौशिक (जाटों के जौहर)

"वे हमारे प्रिय थे। भगतसिंह उनका महान् त्याग तथा साहस भारत के नवयुवकों के लिए प्रेरणा की वस्तु थी, और है।

हमारी इस असहायता और विवशता पर देश में दु:ख प्रकट किया जाएगा, किन्तु साथ ही हमारे देश को इन स्वर्गीय आत्माओं पर गर्व है।''

– भारतरत्न जवाहरलाल नेहरू

''मैंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के नालदार जूतों के नीचे अपने देशवासियों को रौंदे जाते देखा है। इस प्रकार अपना प्रतिवाद पेश करते हुए मुझे कोई दु:ख नहीं है। मुझे इस बात की रंच-भर भी शंका नहीं है कि मुझे आप फांसी दे देंगे या और सजा देंगे। मृत्यु का भय मुझ में नहीं रह गया। बुढ़ापे तक लड़खड़ाते हुए जीने का कोई अर्थ नहीं होता, देश के लिए जवानी में मर जाना कहीं अच्छा है।''

– अमर शहीद ऊधम सिंह

''अपनी बौद्धिक प्रतिभा, दान, चरित्र, दूरदर्शिता से व्यापारिक जगत में एक केन्द्रीय बिन्दु बने और जन-जन का कल्याण किया। इसलिए आप इन्सान नहीं, देवता थे।''

– ईश्वर सिंह डबास

''यह जीवन चरित्र (स्वामी स्वतंत्रानन्द) हमारे देश के स्वाधीनता सेनानी की जीवन गाथा है। हमारे स्वाधीनता संग्राम में, सेना में विद्रोह फैलाने के आरोप में वायसराय के आदेश से बन्दी बनाये जाने वाले एकमेव संन्यासी महात्मा थे। वह ऐसे अद्वितीय संन्यासी थे जिन पर 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में पंजाब के गवर्नर की हत्या का भी दोषा रोपण करके अमानुषिक यातनाएं दी गईं।''

– प्रो० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

''उनके (सर छोटूराम) घोर शत्रु भी यह मानेंगे कि उनकी इच्छाशक्ति तथा संकल्प दृढ़ थे। ऐसे व्यक्ति हमें बहुत कम मिल पाते हैं। वे अत्यन्त कार्यकुशल मंत्री थे और उन्होंने अपने को पंजाब मंत्रिमंडल की आत्मा सिद्ध किया।''

– क्रान्तिकारी भाई परमानन्द

"सामाजिक न्याय के समर्थक के रूप में उन्होंने आर्थिक तथा

सामाजिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के उत्थान-उद्धार का कार्य किया। स्वामी जी ने रूढ़ियों, अन्धविश्वासों तथा नशा सेवन, दहेज प्रथा और अस्पृश्यता जैसी सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करके मरूक्षेत्र में मुक्ति शक्तिशाली आन्दोलन को आगे बढ़ाया।"

— स्वामी केशवानन्द स्मृति चैरिटेबिल ट्रस्ट संगरिया, राजस्थान

"जब भक्त फूलसिंह जैसे फरिश्ते आर्यसमाज में विद्यमान हैं, तब हमको जेल में कौन बन्द रख सकता है?" **— महाशय कृष्ण**

"राजा महेन्द्र प्रताप पहले भारतीय हैं, जिन्होंने सबसे पहले अपनी जागीर को ठुकराया और अंग्रेजी राज्य के खिलाफ एक बागी का रूप लेकर निकल पड़े।" **— क्रान्तिकारी पृथ्वीसिंह आजाद**

"राजस्थान के महान् सपूत श्री बलदेवराम जी मिर्धा के धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण, उदारवादी विचारों, व्यापक सरल हृदयता एवं निस्वार्थ सेवाभावी व्यक्तित्व, असीम आतिथ्य सत्कार की भावना से प्रेरणा लेकर हमें समाज एवं राष्ट्र को उन्नत शक्तिशाली एवं समृद्धिशाली बनाने में पूर्ण योगदान देना चाहिए। उनकी पैनी सूझबूझ, अडिग व कर्मठ व्यक्तित्व हम सबके लिए अनुकरणीय है।" **— वृद्धिचन्द जैन, सदस्य, राजस्थान विधान सभा**

"चौधरी साहब जनता के एक क्रान्तिकारी नेता थे। उन्होंने हमेशा ग्रामीण लोगों के उत्थान तथा अपनी अज्ञानता को दूर करने के लिए कार्य किया। चौधरी चरणसिंह का सारा जीवन लोगों की सुरक्षा तथा कल्याण के लिए संघर्ष में व्यतीत हुआ।"

— चौधरी बंसी लाल

"भारत के आम आदमी की बहबूदी, देश की साम्प्रदायिक एकता, देश में समर्थ तथा सम्पन्न लोकतंत्र का उन्मेष का नाम था

मेजर जयपाल सिंह, देश की राष्ट्रीय एकता का मधुर गायन था— मेजर जयपाल सिंह। वह एक इन्सान था, जो सुखद तथा सम्पन्न लोकतंत्र की कल्पना में जी रहा था। उनके स्वर्गवास के साथ एक निष्ठावान इंसान चला गया, मेहनतकश समाज का महान समर्थक विदा हो गया और चला गया। भारत की किसान संस्कृति का मूर्तिमान जीता जागता इंसान।" **— चौ० अजयसिंह**

"राजा मानसिंह ने आन-बान के लिए वीरगति प्राप्त करके अपने पूर्वजों जैसा ही यश प्राप्त किया। वह झण्डे की प्रतिष्ठा के लिए अड़ गये। वह स्वभाव से स्वाभिमानी, निर्भीक और सच्चे किसान थे। राजवंशी एवं विधायक होते हुए भी कृषि कार्य अपने हाथ से करते थे। उनका जीवन सादगीपूर्ण था।"

— सूरज सुजान पत्रिका, पृष्ठ १३, फरवरी, १९९०

"महाराजा किशनसिंह जी की सन्तानों में से कोई पिता की तरह तेजस्वी निकला तो सही। वह एक असाधारण व्यक्तित्व बन कर उभरा है। मैं उस पर गर्व करता हूं। वह स्वयं ही एक जन-आन्दोलन है।" **— महाराजा महेन्द्र प्रतापसिंह**

"जाट एक अत्यन्त मजबूत जाति है। देखने में वे दैत्य जैसे, चींटियों और टिड्डियों की तरह बहुत संख्या वाले और शत्रुओं के लिए सच्ची महामारी है।" **— तैमूर (मुस्लिम आक्रान्ता)**

●

जाटवीरों के वचनामृत

''जो अपने को अच्छे कुल का मानता हो वह अपनी कथनी और करनी पर ध्यान देकर देखे कि जिन बड़ों के नाम तू दम भरता है, उनके कर्म कैसे थे, तू उन पर चलता है या नहीं। अगर नहीं चलता तो कुछ भी नहीं है।''

— दिले राम (सम्राट् विक्रमादित्य का सेनापति)

''मैं किसी राज्य या जागीर को बचाने के लिए नहीं लड़ रहा। मुझे हिन्दुस्तान के सम्मान की रक्षा करनी है। जब तक औरंगजेब तख्त पर रहेगा, हिन्दुस्तान का सम्मान खतरे में है। इसलिए अब हम दोनों में से एक ही रहेगा—या तो औरंगजेब रहेगा या ये नाचीज गोकुला।'' **— वीर गोकुला**

''जो पांचों इन्द्रियों का दमन करके, बुरे संकल्पों से दूर रहकर भगवद् भक्ति करे, वास्तव में जाट है।'' **— सन्त गरीबदास**

''जहां तक मेरे तथा मेरे देशवासियों के हत्याकाण्ड एवं उजाड़ने के लिए जारी किए गए धमकी भरे और हिंसक आदेश का प्रश्न है, ऐसे कारणों से रणबांकुरों को कोई भय नहीं होता।''

— युगपुरुष महाराजा सूरजमल

''शत्रुओं को सिर झुकाना मैंने सीखा नहीं। कह दिया, फिर सुन लो। गोरे मेरे शत्रु हैं, उनसे क्षमा मैं कदापि नहीं मांग सकता। लाख नाहरसिह पैदा हो जायेंगे। तुमसे मुझे कुछ नहीं मांगना परन्तु इन भय-त्रस्त दर्शकों को मेरा सन्देश कह दो कि जो चिंगारी मैं आप लोगों में छोड़े जा रहा हूं, उसे बुझने न देना। देश की इज्जत अब तुम्हारे हाथ है।'' **— अमर क्रान्तिकारी शहीद नाहरसिंह**

''मुझे तो ईश्वर ने हंसने के लिए ही पैदा किया है। मैं तमाम

ज़िन्दगी हंसता रहूंगा, हंसता रहूंगा। आज अदालत में हंस रहा हूं और कल ईश्वर ने चाहा तो फांसी के तख्ते पर भी हंसूंगा। वकील साहब! इस समय तो मेरे हंसने की शिकायत कर रहे हैं परन्तु जब मैं फांसी के तख्ते पर हंसूंगा तब किस अदालत से शिकायत करेंगे?''

– शहीद शिरोमणि भगतसिंह

''मैंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के नालदार जूतों के नीचे अपने देशवासियों को रौंदे जाते देखा है। इस प्रकार अपना प्रतिवाद पेश करते हुए मुझे कोई दुःख नहीं है मुझे इस बात की रंचमात्र भी शंका नहीं है कि मुझे आप फांसी दे देंगे या और सजा देंगे। मृत्यु का भय मुझ में नहीं रह गया, बुढ़ापे तक लड़खड़ाते हुए जीने का कोई अर्थ नहीं होता, देश के लिए जवानी में मर जाना कहीं अच्छा है।''

– अमर शहीद ऊधमसिंह

''जिस प्रभु ने मुझ पर इतनी कृपा की, उसके नाम पर जो दान करूं, वही थोड़ा है।''

– दानवीर सेठ छाजूराम

''अब भारत स्वतंत्र है, स्वतंत्रता प्राप्त भारत में ठगी का व्यापार शोभा नहीं देता। अब देश में सत्य का व्यवहार होना चाहिए। जैसे वैश्यों को सत्य का व्यवहार करना चाहिए वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सब को इसी मार्ग पर चलना चाहिए।''

– स्वामी स्वतंत्रानन्द

''ऐ भोले जाट मेरी दो बात मान ले।
एक– बोलना ले सीख,
दूजा– दुश्मन पहिचान ले।

– दीनबन्धु सर छोटूराम

''किसान अपना संगठन करे और जिस प्रकार खेती के काम में कर्मठता का प्रदर्शन करते हैं, इसी तरह राजनीति के क्षेत्र में गतिशीलता से काम करे।''

– दीनबन्धु सर छोटूराम

''विवाह में दहेज, दिखावा, फिजूलखर्ची बन्द हो, छोटी बारात और दिन में फेरें हों। मृत्यु भोज, रस्म पगड़ी एवं छूछावनी के लेन-देन जैसे रिवाज छोड़े जायें। स्वास्थ्य और धन के शत्रु-शराब, तम्बाखू और अन्य नशों से छुटकारा पायें। मुकदमें, थानों, अदालतों में ले जाकर गांवों में ही पंच फैसले से निपटायें।''

— त्यागमूर्ति स्वामी केशवानन्द

''ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज तो मेरे रोम-रोम में रम चुके हैं। वे इस जन्म में तो नहीं निकल सकते। ..... संसार का भला भगवान दयानन्द के बताये हुए रास्ते पर चलने से ही हो सकता है।'' **— अमर हुतात्मा भक्त फूलसिंह**

''मैं मानव जाति की एकता में विश्वास रखता हूं। मेरा विश्वास है कि सभी पुरुष और महिला श्रेष्ठ जीवन-निर्वाह का समान अधिकार रखते हैं। जिन लोगों को परमात्मा अथवा समाज द्वारा श्रेष्ठ अथवा अन्य महान् गुण प्राप्त हुए हैं, उनसे आशा की जाती है कि वे मानवता की अधिकाधिक सेवा करेंगे।''

— महान् क्रान्तिदर्शी राजा महेन्द्र प्रताप

''देश की समृद्धि का रास्ता गांवों के खेतों और खलिहानों से होकर गुजरता है।'' **— किसान नेता चौधरी चरणसिंह**

''मुझे अपनी मातृभूमि की रक्षा करने के लिए दूसरों की गर्दन तोड़ने का पूरा अधिकार है।''

मैं स्वस्थ हूं और रहूंगा जब तक कि तुम लोग इस देश से भाग नहीं जाते।'' **— मेजर जयपालसिंह**

''मेरे लिए प्रजा ही सब कुछ है। यदि मेरी प्रजा दुखी और भूखी रहे और मेरे अन्न भण्डार भरे रहें तो मैं राजा बनने योग्य कैसे रहूंगा। सबका पेट भरना तो मेरा कर्तव्य है।''

— महाराजा रणजीतसिंह

विकट योद्धा दिल्लू

स्वदेश-रक्षक और विकट योद्धा राजा दिल्लू उप दिलेराम न्यायप्रिय सम्राट विक्रमादित्य शकारि का कुशल सेनापति और दिल्ली का राज्यपाल था। सम्राट विक्रमादित्य के अग्रज भर्तृहरि के संन्यास लेने पर शकों ने भारत पर आक्रमण किया। इस आक्रमण को दिल्लू ने ही रोका और शकों को मुंह की खानी पड़ी। सम्राट् विक्रमादित्य विजयी हुए। इससे पहले वह भारत के कई प्रान्तों का राज्यपाल रह चुका था। वह आजन्म ब्रह्मचारी, प्रजापालक और विकट योद्धा था।

दिल्लू का जन्म हरियाणा के थानेश्वर के निकट एक ग्राम में हुआ था। इनका पहला नाम दिलेराम था। इनके दादा का नाम महीपाल बल था। दिल्लू के पिता का नाम सुखपाल बल और माता का नाम शरणों देवी था। १८ वर्ष की आयु तक दिल्लू ने महाबली का रूप धारण कर लिया था। २५ वर्ष की आयु तक उनके बल और ब्रह्मचर्य की चर्चा सारे आर्यावर्त्त में फैल गई थी। वे मल्लकला और युद्ध विद्या में निपुण थे। उन्होंने बलशाली मदमस्त हाथियों को कई बार गदा प्रहार से धूल चटाई।

दिल्लू 'बल' वंशी थे। इनकी दादी कुरुवंशी और माता यदुवंशी थीं। वे अपने पूर्वज राजा बली को देवता मानते थे। वे हरियाणा के तत्कालीन सभी वीर कुलों के विख्यात नेता थे। जब सम्राट विक्रमादित्य ने अपना सम्वत् चलाया तो दिल्लू को ही इन्द्रप्रस्थ का राज्यपाल बनाया था। दिल्लू लगभग २१ वर्ष तक इन्द्रप्रस्थ के राज्यपाल रहे। उनका स्थायी निवास पांडवों का किला था। कहा जाता है कि उनकी लोकप्रियता, न्यायप्रियता,

स्वदेश-रक्षा और प्रजापालक के रूप में प्रभावित होकर ही जनता ने इन्द्रप्रस्थ को **'दिल्लू की दिल्ली'** कहना आरम्भ कर दिया था। सम्राट् विक्रमादित्य ने दिल्लू की वीरता और राष्ट्रप्रेम देखकर ही उन्हें **''वीरराज दिल्लू''** की उपाधि से विभूषित किया। हरियाणा में खुशी की लहर फैल गई और दिल्लू को सिर-आंखों पर बैठा लिया। हरियाणावासी उन्हें 'हरियाणा का दिल' मानते थे।

महाभारत में खाण्डवप्रस्थ का नाम बदल कर 'इन्द्रप्रस्थ' किया गया था। विक्रमादित्य के काल से ही दिल्लू नाम से इस नगर का नाम दिल्ली पड़ा। मुगलों ने तुगलकाबाद और शाहजहांबाद जैसे दिल्ली के नाम रखे, परन्तु जनता ने हरियाणा के इस वीर सपूत के नाम पर **'दिल्ली'** नाम ही उपयुक्त समझा। सम्राट विक्रमादित्य के समय में ही लोग दिल्लू को 'दिल्लीपति' कहने लगे थे। आज दिल्ली भारत की राजधानी है। इसे समस्त संसार में राजनीतिक गतिविधियों, व्यापारिक केन्द्र व धार्मिक गतिविधियों के रूप में जाना जाता है। यह नगर कंई बार उजड़ा और बसा। इस विषय में एक जनश्रुति प्रचलित है ''नौ दिल्ली, दस बादली किला बजीराबाद।'' दिल्ली की इतनी ख्याति और नामकरण में राष्ट्रभक्त दिल्लू का नाम ही प्रमुख कारण है।

– सेनापति दिलेराम के उपदेश –

यशस्वी जननायक दिले ने भारतवासियों को जो उपदेश दिए, वे निम्नलिखित हैं–

''कोई कुल अपने को छोटे दादा का नहीं बताता है। सभी अपने को बड़े से बड़ा बताता है। यह बात अच्छी भी है, लेकिन इस बात में मिथ्या अभिमान का एक बड़ा दोष भी है। जो अपने को अच्छे कुल का मानता हो वह अपनी कथनी और करनी पर ध्यान

देकर देखे कि जिन बड़ों के नाम का तू दम भरता है, उसके कर्म कैसे थे, उन पर तू चलता है या नहीं। अगर नहीं चलता तो तू कुछ भी नहीं है।...."

"सुनो भाइयो! शुभकर्मी सबसे ऊंचा है। अशुभकर्मी नीचा है। सेवक सबसे बड़ा है तथा निठल्ला बैठा खाने वाला चौर और छोटा है।.... उनके रहने से इस देश को अपयश आता है और देश का चरित्र गिरकर मिथ्याभिमान से वर्णसंकरता आती है। कुल की मर्यादा नष्ट-भ्रष्ट होकर नैतिक बल गिर जाता है और देश दूसरों का दास हो जाता है। पराधीनता से तो मौत भी अच्छी हैं।"

"मेरे हरियाणावासियो, मुझे महाराजाधिराज विक्रमादित्य के इस शासन में इन्द्रप्रस्थ के शासन की सेवा के लिए राज्यपाल पद देकर इस पवित्र नगर में भेजा है। मेरा जन्म भी हरियाणा का है। इस देश में आदि से आज तक बड़े-बड़े धर्मात्मा, ऋषि, मुनि, महान् पंड़ित, सदाचारी और महान् से महान् योगी, तपस्वी और समाज सुधारक उत्पन्न होते आ रहे हैं।..... गौ और विद्वान् ब्राह्मणों की सेवा सदा करते रहो। शुद्ध भोजन से मन पर प्रभाव पड़ता है फिर विचार अच्छा बनता है और उससे शुभ कर्म बनता है। शुभकर्मी कभी भी विश्व के संघर्ष में निराश नहीं होता।"

"देश-सेवा, राजसेवा, समाज-सेवा में शुभ कर्म की प्रधानता है। अपने को समाजसेवक, देशसेवक और राज्यसेवक मानते हुए जनता-जनार्दन के सुख और दुख को अपने जैसा समझो और ईश्वर, कर्म और मौत को याद रखते हुए अपने जीवन के संग्राम को धर्म का स्थान मान लो और शुभकर्मी बनकर भक्ति भाव की नौका को पार लगाने के लिए आर्यपुरुषों के मार्ग पर चलकर इस पवित्र देवभूमि को पथभ्रष्ट न होने देना।"

जाट सम्राट् हर्षवर्धन

सम्राट् हर्षवर्धन का जन्म महादेवी यशोमति की कुक्षि से संवत् ६४७ विक्रमी में हुआ था। सम्राट् का कुल विभूतिकुल कहलाता था। उनके पूर्वज पुष्यभूति श्रीकण्ठ थे। वे शिवभक्त थे। वे धर्मात्मा और यशस्वी राजा थे, जिन्होंने थानेश्वर नगर को बसा कर अपने राज्य की स्थापना की। पुष्यभूति की पांचवी पीढ़ी में राजा प्रभाकरवर्धन हुए। उनके दो पुत्र हुए —राज्य वर्धन और हर्षवर्धन तथा एक पुत्री राज्यश्री थी।

कहा जाता है कि विभूति कुल हरियाणा के यौधेय गण का ही अंग था। सम्राट् हर्षवर्धन का राज्याभिषेक स्वामी शान्तानन्द संन्यासी की अध्यक्षता में संवत् ६६४ विक्रमी में चैत सुदी पूर्णमासी को थानेश्वर में हुआ। हर्ष महाप्रतापी, कुशल प्रशासक, धर्मात्मा तथा गणतंत्र प्रणाली के संरक्षक थे। इनके राज्य की प्रशंसा में प्रसिद्ध चीनी यात्री (सन् ६३० से ६४५ ई०) हचनसांग ने भी लिखा है कि राजा धर्मपरायण, सच्चरित्र था तथा राज्य की सीमा विस्तार लिए हुए थी।

हर्ष के राज्याभिषेक के समय थानेश्वर में एक विशाल सभा की गई थी, जिसमें हरियाणा के ५८३१ पंचायती मल्लों तथा ५६१ पंचों ने एकत्र होकर देश की दशा पर विचार किया था तथा जनता की उपस्थिति में निम्नलिखित निर्णय लिए गए थे:—

१. २१ प्रमुख पंचों ने हर्षवर्धन को शासन भार सौंपा।
२. सर्वखाप पंचायत के मल्ल पूर्ण सहयोग देंगे।
३. जनता जनार्दन आपके साथ रहेगी।
४. व्यापारी वर्ग आपका कोष है।

५. कृषक आपका अन्न भण्डार है।

६. १६ से ७५ वर्ष तक की आयु के लोग आपके सिपाही हैं।

१५ हजार मल्लों तथा २५८१ महिलाओं की सेना ने तलवारों और खाण्डों से सम्राट् हर्ष का अभिवादन किया था। इस सेना का सेनापति महाबली भीमपाल था, जो सैनिक युद्धकला का विशेषज्ञ था।

सम्राट् हर्षवर्धन संगठित गणतंत्रीय विचारधारा का पोषक था। दिल्ली के चारों ओर २०० कोस तक लोग उन्हें अपना नेता मानते थे। उनकी सेना में पांच हजार हाथी, पच्चीस हजार घोड़े और एक लाख पैदल सैनिक थे। उन्होंने देश की बिखरी हुई प्रजा और राजाओं को संगठित किया और कुशलता से राज का विस्तार करके शान्ति स्थापित की।

सम्राट् हर्ष महादानी और धर्मात्मा थे। वे वेदों के विद्वान् थे। यज्ञप्रेमी और विद्वानों महादानी का सम्मान करने वाले थे। हर्ष महादानी भी थे। हर पांच वर्ष के पश्चात् वे इलाहाबाद के त्रिवेणी तट पर एक विशाल सम्मेलन करते थे, जिसमें समस्त भारत से विद्वान्, ब्राह्मण, साधु-सन्त, कवि, इत्यादि भाग लेते थे। सम्राट् हर्ष सर्वप्रथम यज्ञ करते थे फिर सर्वस्व दान कर देते थे। इस समय उनके शरीर पर केवल एक धोती और ताजरूप पगड़ी होती थी। तत्पश्चात् वे अपनी भगिनी राज्यश्री से नवीन वस्त्र धारण करते थे।

सम्राट् हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री का विवाह कन्नौज के राजा ग्रहवर्मा से हुआ था। ग्रहवर्मा के देहान्त के बाद हर्ष ने थानेश्वर से आकर कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। हर्ष ने अपनी पुत्री का विवाह महायोद्धा भट्टार्क के वंशज राजा ध्रुवसेन से किया था। अपने पूर्वजों के समान हर्ष भी शिवभक्त थे। हर्ष ने ४२ वर्षों तक एक

प्रतापी राजा के समान राज किया। संवत् ७०४ विक्रमी में हर्ष का देहान्त हुआ और यह राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

— शासन प्रबन्ध —

डा० आर० के मुकर्जी ने हर्ष के शासन प्रबन्ध के विषय में लिखा है— "हर्ष का प्रशासन निरंकुश तथा लोकतन्त्रीय तत्त्वों का मिश्रण था।" निरंकुश होते हुए भी हर्ष का राज्य जनहितकारी था। वह बहुत दयालु और उदार थे। प्रजा की भलाई के कार्य करते समय हर्ष सोना और खाना भी भूल जाते थे। वे राज्य के विभिन्न भागों में भ्रमण कर लोगों की शिकायतें सुनकर दूर करते थे। प्रजा को सब तरह की स्वतंत्रता प्राप्त थी।

राजा की सहायता के लिए मंत्रिपरिषद् होती थी। राज्य सिंहासन खाली होने पर परिषद् ही नए राजा की नियुक्ति का फैसला करती थी। विदेश नीति के निर्माण में भी मन्त्रिपरिषद् का हाथ होता था। हर्ष का ममेरा भाई भण्डी राजा का प्रधान मंत्री तथा अवन्ति विदेश तथा युद्ध मंत्री था।

सम्राट् हर्ष ने विजित प्रदेशों पर नियंत्रण रखने, आन्तरिक विद्रोहों का दमन करने और विदेशी आक्रमणों से बचने के लिए एक शक्तिशाली तथा अनुशासित सेना गठित कर रखी थी। सैनिकों की भर्ती के लिए राज्य में ढिंढ़ोरे पीटे जाते थे। घुड़सवार सेना के लिए सिंध, अफगानिस्तान और ईरान से अच्छी नस्ल के घोड़े मंगा रखे थे। राज्य में एक अभिलेख विभाग की स्थापना कर रखी थी, जिसमें राज्य में होने वाली घटनाओं का रिकार्ड रखा जाता था।

शासन की सुविधा के लिए सम्राट् हर्ष ने राज्य को प्रान्तों में विभाजित कर रखा था। प्रान्त को 'भुक्ति' कहा जाता था। प्रान्तीय गवर्नर 'उपरिक' कहलाता था। 'भुक्ति' को कई जिलों में बांटा गया था। इसका प्रबन्ध विषयपति के हाथ में होता था। ग्राम का

प्रशासन एक मुखिया के हाथ होता था, जिसे 'ग्रामक्षपटलिक' कहा जाता था। उसकी सहायता के लिए अनेक लेखक थे, जो 'करणिक' कहलाते थे।

हर्ष के समय लोक-सेवा बहुत अच्छी प्रकार संगठित थी। सरकारी आय का मुख्य साधन भूमि 'कर' था, जो उपज का छठा भाग होता था। घाटों पर भी कर लगता था। अपराधियों पर किए गए जुर्माने भी राज्य की आय के प्रमुख साधन थे। व्यापारिक वस्तुओं पर भी 'कर' लिया जाता था।

सम्राट् हर्षवर्धन धार्मिक, उदार और दयालु थे परन्तु दण्ड-विधान बहुत कठोर था। सामाजिक नियमों को तोड़ने पर हाथ, पांव, नाक और कान काट दिए जाते थे। राजद्रोहियों को उम्रकैद का दण्ड थ। घोर अपराधों के लिए मृत्युदण्ड दिया जाता था। छोटे अपराधों के लिए केवल जुर्माना किया जाता था। इस प्रकार दण्ड-विधान कठोर होने पर अपराध कम होते थे।

हर्षवर्धन शूरवीर, कुशलप्रशासक और प्रतापी सम्राट् थे। उन्होंने छोटे-छोटे राज्य जीतकर एक विशाल और सुदृढ़ साम्राज्य की स्थापना की थी। उनका राज्य जनकल्याण की भावना पर आधारित था।

लोकदेव वीर तेजा जी

राजस्थान की वीरभूमि के जिला नागौर में वीर तेजा जी ने जन्म लिया था। राजस्थान में तेजा जी को लोकदेव के रूप में पूजा जाता है। इनकी जन्म तथा मृत्यु तिथि के विषय में मतभेद है। जाट इतिहास के लेखक ठाकुर देशराज जी का मत है– ''तेजा जी का जन्म संवत १०४० विक्रमी को हुआ था और बलिदान मार्गशीर्ष सुदी दशमी संवत् १०७२ वि० को।'' एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार तेजा जी का जन्म भादों १०, संवत् १०१० विक्रमी और मृत्यु सावन सुदी तीज संवत् में हुई थी।

तेजा जी का जन्मस्थान 'खिडनाल' परगना नागौर था। यह स्थान नागौर-जोधपुर मार्ग पर नागौर से १५ कि० मी० की दूरी पर स्थित है। तेजा जी के पिता का नाम ताहर जी था। उनके आदिपुरुष का नाम महाबल था। ताहर जी के छः पुत्र और दो पुत्रियां थीं। तेजा जी की बहनों के नाम राजल और डूंगरी थे। राजल विवाहित थी और डूंगरी अविवाहित।

तेजा जी धौल्यावंशी जाट थे। इस संबंध में ठाकुर देशराज जी की मान्यता है– ''तेजा जी के पिता ताहिर जी एक गणतंत्र के सरदार थे। उनके राज्य में खिड़नाल और रूप नगर दो प्रमुख स्थान थे। ताहिर जी धौल्यावंशी जाट थे। राजस्थान के विविध भागों में इस वंश के जाट मिलते हैं। कुछ ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर किशनगढ़ तथा मारमाड़ के क्षेत्र पर राठौरों का अधिकार होने से पहले धौल्या वंशी जाटों का ही अधिकार था।''

वीर तेजा जी के पिता ताहिर जी एक गणतंत्र के मुखिया थे। तेजा जी को अपने पिता द्वारा दिए कार्यों में कोई रुचि न थी।

भक्तिभाव में उनकी रुचि थी और मुक्त रूप से विचरण करते थे। गौ सेवा करते और हरिभजन में मस्त रहते। ठाकुर देसराज का कहना है– ''तेजा जी वीर के सिवाय भक्त भी ऊंचे दरजे के थे। हरिभजन और साधु संगत भी उन्हें बहुत पसन्द थे। भाला और माला दोनों ही उनको प्रिय थीं। उनके नाम पर नौजवान प्राणों की बाजी लगाने को सदैव तत्पर रहते थे।

वे कृष्ण की भांति गौ को चराने में जहाँ मग्न थे, वहां हथियार चलाने में भी उन्हें आनन्द आता था।''

उस समय की परम्परा के अनुसार उनका विवाह बचपन में ही 'पेमल' नाम की कन्या से कर दिया गया था। कुछ लोग पेमल को 'बोढ़ल' भी कहते हैं। डा० नत्थनसिंह जी ने वीर तेजा जी के विवाह के विषय में लिखा है– ''भक्ति में अधिक रुचि होने के कारण तेजा जी 'पेमल' को विदा करके नहीं लाये थे। इसके कारण उनकी ससुराल में भी उनके प्रति विरोध उत्पन्न हो रहा था। दूसरे इनके परिवार के लोग भी चाहते थे कि वधु घर आ जाये। अतः तेजा जी पर दोनों ओर का दबाव था। इसी बीच एक घटना घट गई। एकदिन एक गूजरी ने ताना दिया, ''जिसकी युवा पत्नी घर बैठी हो, उसका मर्द सन्त बना फिरता है।'' इस बात को सुनकर तेजा जी ने पत्नी को घर लाने का इरादा कर लिया।''

बालू नाग को कई बार वीर तेजा जी से पराजित होना पड़ा था। अब की बार नागों ने प्रतिशोध की भावना से समूची शक्ति के साथ आक्रमण कर दिया। तेजा जी ने वीरता के साथ मुकाबला किया किन्तु मारे गए। ठाकुर देशराज के अनुसार तेजा का बलिदान इस प्रकार हुआ– ''इन महान गौ भक्त का बलिदान भी गौरक्षा में ही हुआ। रूपनगर के पास लाखा गूजरी की गौओं की रक्षा करने में वे सख्त घायल हुए किन्तु मरने से पहले उन्हें बालू नाग के घर में एक

आग से झुलसे हुए सर्प को अपनी जिव्हा का रक्त पिला कर चंगा करने के प्रयत्न में अपने प्राणों को दया, धर्म पर न्यौछावर कर दिया।" तेजा जी की मृत्यु का समाचार पाकर, उनकी पत्नी पेमल सती हो गई।

वीर तेजा जी को लोकदेव की पदवी क्यों मिली? इस विषय पर डॉ० नत्थनसिंह ने विस्तार से प्रकाश डाला है। "इन तमाम लोक गाथाओं के मूल में ऐतिहासिक सत्य इतना ही है कि नाग-जाति लोगों को परेशान करती थी। उसके विविध उत्पातों से आर्यजनता परेशान थी। तेजा जी तथा उनके परिवार के लोगों ने बड़ी वीरता तथा साहस के साथ नागौर क्षेत्र से ही नहीं, राजस्थान के कई भागों से नाग लोगों को निष्कासित किया, जन उत्पीड़न की उनकी क्षमता घटाई और आर्यजाति के लोगों की जान-माल तथा इज्जत की रक्षा की। यही कारण है कि उनको 'लोकदेव' की पदवी दे दी गयी। कालान्तर में जनता की यही आस्था पूजा के रूप में परिणत हो गयी।"

जिस प्रकार राम और कृष्ण को, शिक्षित समाज ने, परमात्मा का अवतार मानकर, पूजना शुरू कर दिया, उनको मंदिरों में प्रतिष्ठित कर दिया और उनको आराध्य बना दिया, उसी प्रकार तेजा जी की लोक हितमूलक ख्याति ने, उनको पूजा का विषय बना दिया। आप्त जनता ने उनको देवता मान लिया। उनके मंदिर बन गये, उनमें उनकी पूजा होने लगी, वहां मेले लगने लगे। राजस्थान में कई स्थानों पर तेजा जी के मेले लगते हैं। तेजा जी के भक्तों का विश्वास है कि उन पर सर्पदंश का कोई प्रभाव नहीं होता। लोगों को यह भी विश्वास है कि तेजा जी का नाम लेने से सांप का जहर उतर जाता है। यह विश्वास किसी एक जाति विशेष का नहीं, वरन अनेक जातियों का है। तेजा जी को, कई जातियों के लोग अपना देव मानते हैं।"

राजस्थान में तेजा जी को त्राणकर्ता लोकदेव के रूप में माना जाता है। आज तेजा जी के इतिहास के रूप में लोक विश्वास तथा लोक-किंवदंतियां अधिक मिलती हैं। तेजा जी की स्मृति में राजस्थान में बड़े भारी मेले लगते हैं। 'परवतसर' नामक स्थान के तालाब पर लोकदेव वीर तेजा जी की भव्य प्रतिमा लगी हुई है। मेले का वर्णन डा० नत्थनसिंह ने इस प्रकार किया है ''इस मेले के दिन, परवतसर राज्य के बड़े अधिकारी राजकीय सम्मान के साथ, तेजा जी का झण्डा मेला स्थान पर लाते हैं। झण्डा खड़ा करने से पहले कहा जाता है—''जाटो आओ झण्डा उठाओ।' इसके बाद सभी लोग झण्डा उठाते हैं। झण्डा प्रतिष्ठित होने के बाद, उसको ग्यारह तोपों की सलामी दी जाती है। इसी प्रकार का एक मेला व्यावर नामक स्थान पर लगता है। यहां एक लख्खी मेला होता है। इसके अतिरिक्त, किशनगढ़, बूंदी, अजमेर तथा खरनाल में भी तेजा जी के मंदिर बने हैं। खरनाल के मंदिर का जीर्णोद्धार संवत् १९४३ में हुआ था। जीर्णोद्धार कराने वाले लोगों की सूची का एक शिलापट भी मंदिर में है। एक अन्य शिलालेख भी मंदिर मे लगा है, जिस पर लिखा है—

खिजमत हतो खिजमत, अजमत दिन चार।
चाहे जन्म बिगार दे, चाहे जन्म सुधार।।

खड़नाल गांव की पूर्व दिशा में एक तालाब है, इसी तालाब के किनारे पर तेजा जी का मंदिर बना है। तेजा जी लोक विश्रुत व्यक्ति हैं। उनके व्यक्तित्व की अनेक विशेषताएं हैं। इनके कारण उनको लोकदेव माना जाता है। तेजा जी के प्रति श्रद्धा, पूजा और आराधना का यह सबसे बड़ा प्रमाण है। उनको राजस्थान की भूमि में वह श्रद्धा तथा सम्मान प्राप्त है, जो किसी सामंत को नहीं मिला। सत्य बात तो यह है कि जो जनता के दुःख-दर्द में शामिल होता है, जनता उसकी पूजा करती है।''

हठयोगी भक्त धन्ना जाट

धन्ना जाट के जन्म के विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं। एक मत के अनुसार धन्ना का जन्म पंजाब में मालवा क्षेत्र के एक जाट परिवार में हुआ था। वे बाल्यकाल से ही धार्मिक प्रवृति के थे। धन्ना भक्त के जन्म के विषय में अधिकांश किंवंदन्तियां व विचारधाराएं यही मानती हैं कि उनका जन्म चौदहवीं शताब्दी से पूर्व ही लाहौर में हुआ था। जन्म तिथि के विषय में तो निश्चित ही नहीं है। बाद में धन्ना भक्त का परिवार हरियाणा के रेवाड़ी में आकर बस गया था।

जाटों के गांवों में निम्नलिखित कहावत प्रचलित है—

"हाथी का हरचरतवाल पांचानेरी गांम खेतल के उदर लौटाओं जाको धन्ना नाम।"

उपरोक्त कहावत से पता चलता है कि धन्ना भक्त हरचरतवास गोत्र के जाट थे। उनकें पिता का नाम हाथी और माता का नाम खेलत था। वे गांव पांचानेरी के रहने वाले थे। धन्ना बहुत सरल स्वभाव के और ईश्वरभक्त थे। उन्होंने हठयोग भी सीखा था। वे विवाहित थे। धन्ना धुन के धनी थे।

ऐसा कहा जाता है कि धन्ना भक्त ने समस्त भारत का भ्रमण किया था। वे मालवा, गुजरात, बिहार और ब्रजभूमि में काफी वर्षों तक रहे। भ्रमण के दौरान उनके काफी शिष्य बने। अब भी जाटों में उनकी भक्त के रूप में मान्यता बनी हुई है। राजस्थान में पुष्कर नामक तीर्थस्थान में ब्रह्मा जी के मंदिर के निकट धन्ना भक्त का मंदिर बना हुआ है। दूर-दूर से उनके भक्त मन्दिर में भक्ति भाव से दर्शन करने आते हैं।

हठयोगी भक्त धन्ना जाट के विषय में राजस्थान, हरियाणा, पंजाब तथा ब्रजभूमि में अनेक चमत्कारिक बातें प्रचलित हैं। एकबार कुछ साधु धन्ना भक्त के पास आए और उन्हें ठाकुर जी की मूर्ति दे गए। सन्त जाते समय धन्ना को समझा गए कि दैनिक रूप से ठाकुर जी को स्नान कराके भोग लगाना और फिर स्वयं भोजन करना। सन्तों के वचनों को भक्त धन्ना में पूरी तरह गांठ बांध ली।

दूसरे दिन फिर धन्ना ने ठाकुर जी को स्नान कराया और भोग के लिए रोटियां उनके सम्मुख रख कर बोले– ''भगवान यह आपका भक्त आपसे विनती करता है कि भोजन करें।'' शाम तक धन्ना ठाकुर जी के सम्मुख बैठे रहे। कोई बात नहीं हुई। पत्नी ने भी समझाया कि हठ त्याग दें परन्तु उन्होंने नहीं माना। धन्ना ने पत्नी से कहा, ''जब ठाकुर जी सन्तों का भोजन खा सकते हैं तो मेरा क्यों नहीं।'' वे सारी रात ठाकुर जी के सम्मुख बैठे रहे।

दूसरे दिन फिर धन्ना ने ठाकुर जी को खीर-पूरी का भोग लगाया। उन्होंने सोचा कि शायद भगवान रोटी न खाते हों। पकवान तो वे आवश्य खा लेगें। दोनों पति-पत्नी ठाकुर जी के सम्मुख बैठे रहे परन्तु कोई परिणाम सामने न आया। एक सप्ताह बीत गया। पति-पत्नी भूख से बेहाल हो गए। धन्ना ने कहा, ''जब भगवान भोजन नहीं करते तो हमारा इस संसार में जीना व्यर्थ है। इस जीवन का क्या उपयोग?'' धन्ना अपना जीवन समाप्त करने के लिए गंडासा ले आए और ठाकुर जी की प्रतिमा के सम्मुख गर्दन पर वार करने ही वाले थे कि आवाज आई, ''भक्त प्रवर आंखें खोलो।'' धन्ना के सम्मुख चतुर्भुज रूप में साक्षात् भगवान खड़े थे। उस दिन से भगवान ने वायदा किया कि वे नित्य धन्ना भक्त के साथ भोजन किया करेंगे।

धन्ना भक्त उदार और परोपकारी जीव थे। दूसरों का दुःख अपना दुख समझते थे। स्वयं निस्पृही थे। एकबार अपने खेत में बीज बोने जा रहे थे। खेत के समीप ही कुछ साधुओं ने उनसे भिक्षा मांगी। धन्ना ने सारा बीज साधुओं को दे दिया और खेत में यूं ही लोक-दिखावा हल चला कर शाम को घर लौट आए। कहावत है कि खेत में बिना बीज बोए फसल उग आई। धन्ना खुशी से नाचने लगे।

भगवान का भक्त किसी जाति विशेष से बंधा नहीं रहता। वह तो समस्त मानवता का होता है। परन्तु धन्ना भक्त में 'जाट हठ' और 'भक्त हठ' दोनों आकर एक हो गए हैं। वे धुन के धनी, प्रभु के प्यारे थे। उन्होंने काव्य रचना भी की। क्षत्रियों का इतिहास, प्रथम भाग में श्री राजपाल शास्त्री, ने भक्त धन्ना के विषय में लिखा है, "उन्होंने बाद में कविताएं भी कीं। इनकी रचनाएं इतनी उत्तम और लोकप्रिय थीं कि सिक्खों के गुरु ग्रन्थ साहब में "धन्ना का आरता" के नाम पर सम्मिलित कीं। उसमें इन्होंने अपने प्रभु से सवारी के लिए चंगेरी घोड़ी, दूध पीने को भैंस और खेत जोतने को बैल आदि वे वस्तएं मांगी जो कि गांव के किसान के लिए आवश्यक होती हैं। इसी कारण धन्ना का आरता बड़े प्रेम से ग्रामीण पंजाबियों में दैनिक रूप से पाठ किया जाता है।"

●

वीर गोकुल जाट

वीर गोकुला जाट

श्री नरेन्द्र सिंह वर्मा

यह था वह समय जब सम्पूर्ण देश में उनकी सिंह गर्जना गूंज उठी थी। बड़े-बड़े छत्रधारियों के रहते हुए अकेले गोकुल सिंह ने औरंगजेब को ललकारा था। ब्रज की शस्यश्यामला धरती क्रोध से धधक उठी थी और प्रचण्ड दावानल की तरह उठ खड़े हुए थे, वे जाट किसान जो उस धरती मां की तरह ही सहनशील और धैर्यवान होते हैं। अत्याचारों ने उनके धैर्य के अथाह स्रोत सोख लिए थे। प्यार, सेवा और दया से ओत-प्रोत रहने वाले उनके नेत्र कराल काल सरीखे हो रहे थे। हिन्दू जातियों में कबूतर की तरह सीधा-साधा और भोला-भाला समझा जाने वाला जाट वीरभद्र की तरह रौद्र रूप में हो खड़ा था। अग्निपुंज झर रहे थे उसकी आंखों से; और यह देख अंहकार में चूर, मुगल बादशाह भय से कांप उठा। वह फरमान दर फरमान जाटों का कत्लेआम कर डालने के हुक्मनामे लिखने लगा। और तब सिर्फ मुगल ही नहीं बल्कि राजपूत भी उन आदेशों का पालन करने में जुट गये परन्तु फिर भी किसी के किये धरे कुछ न हो सका। अन्ततः जाटों की कोपाग्नि में भारत का मुगल साम्राज्य जल गया।

जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है कि शाहजहां के शासन काल में जाट-मुगल संघर्ष चल रहा था। मुगलों ने आम्बेर के जयसिंह की सहायता से जाटों को कुचल दिया। क्रांति की ज्वालायें दब गईं किन्तु स्फूलिंग निर्मूल न हो सके। वे उड़कर अन्यत्र जा पहुंचे और स्वभाववश वहां भी सुलगने लगे। गोकुल सिंह ऐसे ही स्फूलिंग थे, जो अब अंगार बन चुके थे और अमर ज्योति बनते जा रहे थे।

वीरवर गोकुलसिंह की सूझ-बूझ और प्रतिभा पर आश्चर्य किये बिना नहीं रहा जा सकता कि इतने द्वेषपूर्ण और जाट विरोधी जो वस्तुतः भारत विरोधी था, वातावरण में भी उन्होंने किस अलक्ष्य चतुराई से अत्यल्प समय में आगरा और दिल्ली की दोनों मुगल राजधानियों के नीचे मानों बारूद बिछा दी थी। आगरा की नाक के नीचे से लेकर दिल्ली के दामन तक , काल का उपहास करने वाली वह मृत्युंजयी भावना प्रकट हुई जिसके समकक्ष उदाहरण कम मिलते हैं।

सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं– "मुसलमानों की धर्मान्धतापूर्ण नीति के फलस्वरूप मथुरा की पवित्र भूमि पर सदैव ही विशेष आघात होते रहे हैं। दिल्ली से आगरा जाने वाले राजमार्ग पर स्थित होने के कारण मथुरा की ओर से सदैव विशेष ध्यान आकर्षित होता रहा है। वहां के हिन्दुओं को दबाने के लिए औरंगजेब ने अब्दुन्नवी नामक एक कट्टर मुसलमान को मथुरा का फौजदार नियुक्त किया।"

१६६९ ई० के प्रारम्भ में अब्दुन्नवी के सैनिकों के दस्ते मथुरा जनपद में चारों ओर लगान वसूली करने निकल पड़े। अब्दुन्नवी ने पिछले ही वर्ष गोकुलसिंह के पास एक नई छावनी स्थापित की थी। सभी कार्यवाही का सदर मुकाम यहीं था। गोकुलसिंह के आह्वान् पर किसानों ने लगान देने से इन्कार कर दिया। मुगल सैनिकों ने लूटमार से लेकर किसानों के ढोर-डंगर तक खोलने शुरू कर दिये। बस,संघर्ष शुरू हो गया। फौजदार के सैनिक दलों पर चौतरफा मार पड़नी शुरू हो गई।

तभी औरंगजेब का नया फरमान (९ अप्रैल, १६६९) और आया – "**काफिरों के मदरसे और मंदिर गिरा दिये जायें।**" फलतः ब्रज क्षेत्र के कईं अति प्राचीन मंदिरों और मठों का विनाश

कर दिया गया। कुषाण और गुप्तकालीन निधि, इतिहास की अमूल्य धरोहर तोड़-फोड़, मुण्डविहीन, अंगविहीन हजारों की संख्या में सर्वत्र ही छितरा दी गई। सहस्रों पुराने मंदिर और मठ खण्डहर बन गये। पाठशालाओं में उल्लू बोलने लगे, उत्सव और मेलों के पारम्परिक स्थल भांय-भांय करने लगे। तब रक्त की धारायें की उफन कर बहने लगीं। संपूर्ण मंडल में मुगलिया घड़सवार और गिद्ध, चील उड़ते दिखाई देते थे। और दिखाई देते थे धुएं के बादल और लपलपाती ज्वालायें– उनमें से निकलते हुए शाही घुड़सवार।

मई का महीना आ गया और आ गया अत्याचारी फौजदार का भी अन्त। अब्दुन्नवी ने सिहोरा नामक गांव को जा घेरा। गोकुलसिंह भी पास में ही थे। अब्दुन्नवी के सामने जा पहुंचे। मुगलों पर दुतरफा मार पड़ी। फौजदार गोली प्रहार से मारा गया। बचे-खुचे मुगल भाग गये।

निराश और मृतप्राय हिन्दुओं में जीवन का संचार हुआ। उन्हें दिखाई दिया कि अपराजय मुगलशक्ति के विषदन्त तोड़े जा सकते हैं। उन्हें दिखाई दिया अपनी भावी आशाओं का रखवाला–एक पुनर्स्थापक गोकुलसिंह।

औरंगजेब ने इस स्थिति की कल्पना स्वप्न में भी नहीं की थी। राजधानी की नाक के नीचे बसे चूहों ने शाह नाक को कुतरकर वीभत्स बना डाला था। गंवार, उजड्ड घास छीलने वाले जाट इतना कर गुजरेंगे जो राजनीति और राजलक्ष्मी के स्वामी अनेकों राजा सोचने तक का साहस नहीं जुटा सके। उसके तूरानी, ईरानी और अफगानी वीर आगरा शहर की मांद में आ घुसे थे और गोकुल सिंह की दिशा में जाने के नाम पर थर-थराते थे।

तब उनका मनोबल बढ़ाने के लिए बादशाह ने न सिर्फ दीन

के नाम पर बल्कि इनामों-इकरार व अन्य शाही तरीकों से काम लिया उसने मुसीबत की घड़ियों मे परखे हुए और बड़े से बड़े भंयकर युद्ध का अनुभव रखने वाले सेनापतियों को एकत्र किया। इनमें से प्रमुख था शफशिकनखां। इसे मथुरा का फौजदार नियुक्त किया गया।

शफशिकनखां की सहायता के लिए आगरा के किलेदार रादअन्दाज खां को लाया गया। यह औरंगजेब के परम विश्वस्त लोगों में से एक था। रादअन्दाज खां का सम्मान व हौंसला और बढ़ाने के लिए उसे सोने के साज वाला घोड़ा पुरस्कारस्वरूप दिया गया। ऐसा लगता था कि ये सभी ईरान के बादशाह से युद्ध करने निकले थे— किसानों से नहीं। इन दोनों की सहायतार्थ एक राजपूत सरदार वीरमदेव (ब्रह्मदेव) सिसौदिया को भी भेजा गया।

इसके बाद पांच माह तक भयंकर युद्ध होते रहे। मुगलों की सभी तैयारियां और चुने हुए सेनापति प्रभावहीन और असफल सिद्ध हुए। क्या सैनिक और क्या सेनापति सभी के ऊपर गोकुलसिंह की वीरता और युद्ध-संचालन का आतंक बैठ गया।

अन्त में सितम्बर मास में बिल्कुल निराश होकर शफशिकन खां ने गोकुलसिंह के पास सन्धि-प्रस्ताव भेजा कि— १. बादशाह उनको क्षमादान देने के लिए हैं। २. वे लूटा हुआ सभी सामान लौटा दें। ३ वचन दें कि भविष्य में विद्रोह नहीं करेंगे।

गोकुलसिंह ने पूछा— "मेरा अपराध क्या है जो मैं बादशाह से क्षमा मागूगा। तुम्हारे बादशाह को मुझसे क्षमा मांगनी चाहिए क्योंकि उसने अकारण ही मेरे धर्म का बहुत अपमान किया है, बहुत हानि की है। दूसरे उसके क्षमादान और मित्रता का भरोसा इस संसार में कौन करता है, उसने कुरान को साक्षी बनाकर अपने सगे

भाई मुराद से जो वायदे किये थे, उन्हें तुम अच्छी तरह जानते हो। कुरान भी मुराद को कत्ल होने से नहीं बचा सकी। ..... वायदे गए जहन्नुम में। तुम्हारा मालिक इतना स्वार्थी और नीच है कि उसने न सिर्फ अपने भाईयों और भतीजों की हत्या करवा दी बल्कि अपने बड़े बेटे मुहम्मद सुल्तान को भी धीमे-धीमे मौत के मुंह की तरफ खींच रहा है। उसे अभी तक न अपने बेटे की भरी जवानी पर दया आयी है और न उसकी बेगम पर। कुतुबशाह की बेटी से पूछना कि उसका ससुर (औरंगजेब) कितना भला आदमी है। वह बेचारी जो दस-ग्यारह साल से एक बेवा से भी बदतर जिन्दगी जी रही है, एक पल को यह नहीं भूल सकती कि उसके शौहर को धीमा जहर देकर मारा जा रहा है। क्षमादान अभी तीन वर्ष पहले शिवाजी को भी क्षमादान मिला था न? कुंवर रामसिंह न होते तो अब तक परलोक में बैठे होते। शिवाजी भाग्यशाली थे कि राजा जयसिंह का हाथ उनके ऊपर था। मुझ से तो आम्बेर का राजा भी बिना बात रुष्ट है।"

"तुम चाहते हो कि मैं उस सामान को जो मैंने खुले मैदान में अपने बाजुओं के जोर से पाया है तुम्हारे चालाक बादशाह को लौटा दूं, जिससे कि हम फिर पंख कटे कबूतरों की तरह रह जायें। तुम्हें और तुम्हारे बादशाह को बड़ी मायूसी होगी कि वह सामान मेरे पास नहीं है। मैं रखता भी नहीं, फौरन अपने जांनिसारों के बीच बांट देता हूं ताकि वे बाज बन सकें। मैं रहूं न रहूं, वह सामान अब मुगलों को नहीं मिलेगा। वह तो तुम्हारी कब्रें तैयार करने के काम आएगा।"

"हां, तुम्हारे अन्दाज़े बयां से जाहिर है कि तुम मुझे लुटेरा साबित करना चाहते हो। तुम्हें मालूम हो, बल्कि तुम्हें मालूम है कि असली लुटेरे तुम्हारे बादशाह और शहजादे हैं। उसकी तरह हम अपनी प्रजा को नहीं लूटते। अभी कुछ ही साल पहले शाहजादा

मुराद ने सूरत शहर को लूटा था। तुम्हारे बादशाह के बाप ने भी जी भर कर लूट मार की थी। उसने तो आगरा और फतेहपुर सीकरी को भी नहीं छोड़ा था। तुम्हारे बादशाह के ताया-खुसरों ने भी लूटमार की थी। जिनकी हिफाजत करना इन सभी का फर्ज था, उन्हीं को इन बेशर्मों ने लूटा। तुम खानदानी लुटेरे हो। बाहर से आकर मालिक बनकर बैठ गए हो। इस पत्र के साथ आरसी भिजवा रहा हूं। उसमें पहले अपना चेहरा देखना फिर वही आरसी अपने बादशाह को दिखाना। तुम्हारे महल के आरसी खुशामन्दी हो गए हैं न। सही चहेरा नहीं दिखाते।''

''भविष्य के लिए मैं मुगलों को क्या वचन दूं क्योंकि मेरा कोई भविष्य नहीं है। मैं किसी राज्य या जागीर को बचाने के लिए नहीं लड़ रहा हूं। मैंने हिन्दुस्तान की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए तलवार उठाई है और यह मैं अच्छी तरह जानता नहीं कि जब तक बादशाह औरंगजेब तख़्त पर है हिन्दुस्तान की मान-मर्यादा खतरे में रहेगी। इसलिए अब हम दोनों में से एक ही रहना है। या तो बादशाह औरंगजेब रहेगा या यह नाचीज गोकुल।''

संधि और समझौते की भी सभी संभावनायें एक साथ ही समाप्त हो गईं और औरंगजेब को यह समझते देर नहीं लगी कि दो विरोधी आमने-सामने आ गये हैं। एक दारुल इस्लाम बनाने को कटिबद्ध और दूसरा उसे न बनने देने के लिए।

इस उत्तर के बाद गोकुलसिंह एक साधारण जमींदार या भूमिए नहीं रह गये थे। वह इतने ही गौरवशाली और महिमा मण्डित हो चुके थे जितना कि दिल्ली का बादशाह। औरंगजेब ने भी अपने प्रतिद्वंदी को पहचानने में भूल नहीं की। वह उनकी वीरता और समझदारी का कायल हो चुका था। वह समझ गया था कि गोकुलसिंह बराबर का शत्रु है। इसके साथ लड़ने में दिल्ली के बादशाह की तौहीन नहीं होगी।

अतः औरंगजेब स्वयं एक बड़ी सेना तोपों और तोपचियों के साथ लेकर अपने इस अभूतपूर्व प्रतिद्वन्दी से निपटने चल पड़ा। परम्परायें और मर्यादा टूटने का यह एक ऐसा ज्वलन्त और प्रेरक उदाहरण है जिधर इतिहासकारों का ध्यान नहीं गया है। उस समय के ढाई सौ वर्ष के मुगल इतिहास में जिसमें महान् और असाधारण माने जाने वाले सभी मुगल बादशाह हो चुके थे, कोई मुगल बादशाह एक साधारण जमींदार या किसान का सामना करने युद्धक्षेत्र में नहीं गया था। मनूची के वृतान्त के अनुसार पहले अकबर को जाना पड़ा था और अब औरंगजेब को, जिसका साम्राज्य न सिर्फ मुगलों में ही बल्कि उस समय के सभी हिन्दू मुस्लिम शासकों में सबसे बड़ा था। यह थी वीरवर गोकुलसिंह की महानता।

दिल्ली से चलकर औरंगजेब २८ नवम्बर, १६६९ को मथुरा जा पहुंचा। गोकुलसिंह के सैनिक और सेनापति (ये वेतन भोगी नहीं थे, क्रांति-भावना से अनुप्राणित लोग थे) रबी की बुआई के सिलसिले में पड़ोस के आगरा जनपद में चले गये थे। उनका पुनरागमन और गोकुलसिंह से सम्मिलन रोकने के लिए औरंगजेब शक्तिशाली सैनिक दलों को निश्चित आदेशों के साथ आगरा की ओर भेजा। ये सैनिक दस्ते सभी मुख्य-मुख्य मार्गों, घाटों आदि पर क्रांतिकारियों के बीच दीवार की तरह अड़ गये।

औरंगजेब ने अपनी छावनी मथुरा में बनायी और वहां से सम्पूर्ण युद्ध का संचालन करने लगा। गोकुलसिंह को चारों ओर से घेरा जा रहा था। उसने एक सेनापति हसन अली खां को एक मजबूत और सुसज्जित सेना के साथ गोकुलसिंह के विरुद्ध मुरसान की ओर से भेजा।

हसन अली खां ने ४ दिसम्बर, १६६९ को प्रातःकाल के समय

अचानक धावा मारकर जाटों की तीन गढ़ियों रेवाड़ा, चन्द्ररख और सरखरु को घेर लिया। शाही तोपों और बन्दूकों की मार के आगे ये छोटी-छोटी गढ़ियों ज्यादा उपयोगी सिद्ध न हो सकीं और बड़ी जल्दी टूट गयीं। फिर भी जाट बड़े अदम्य साहस से दोपहर तक युद्ध करते रहे।

हसनअली खां की सफलताओं से खुश होकर औरंगजेब ने शफ शिकन खां के स्थान पर उसे मथुरा का हवलदार बना दिया। उसकी सहायता के लिए कुछ और सेनापति बुला लिए गये। आगरा परगने से अमानुल्लाह खां, मुरादाबाद का फौजदार नामदार खां, आगरा शहर का फौजदार होशियार खां अपनी-अपनी सेनाओं के साथ आ पहुंचे। यह विशाल सेना चारों ओर से गोकुलसिंह को घेरती हुई आगे बढ़ने लगी।

गोकुलसिंह के विरुद्ध किया गया यह अभियान उन आक्रमणों से विशाल था, जो बड़े-बड़े राज्यों और वहां के राजाओं के विरुद्ध होते आये थे। इस वीर के पास न तो बड़े-बड़े दुर्ग थे, न अरावली की पहाड़ियां और न ही महाराष्ट्र जैसा विविधतापूर्ण भौगोलिक प्रदेश। वे गंगा—यमुना के मैदानों में शत्रु से जूझ रहे थे। इन अलाभकर स्थितियों के बावजूद उन्होंने जिस धैर्य और रणचातुर्य के साथ एक शक्तिशाली साम्राज्य की केन्द्रीय शक्ति का सामना करके बराबरी के परिणाम प्राप्त किये वह सब कम विस्मयजनक नहीं हैं।

दिसम्बर १६६९ के अन्तिम सप्ताह में तिलपत से २० मील दूर गोकुलसिंह ने शाही सेना का सामना किया। जाटों ने मुगल सेना पर एक दृढ़ निश्चय और भयंकर क्रोध से आक्रमण किया। सुबह से शाम तक युद्ध होता रहा परन्तु कोई निर्णय नहीं हो सका। दूसरे दिन फिर घमासान युद्ध छिड़ गया। जाट अलौकिक वीरता के साथ युद्ध कर रहे थे। मुगल सेना तोपखाने और जिरहबख्तर से

सुसज्जित घुड़सवार सेनाओं के होते हुए भी गोकुलसिंह पर विजय प्राप्त न कर सकी।

गोकुलसिंह के पास तोपों की कमी थी, जिरहबख्तर से सुसज्जित घुड़सवार सेना का अभाव था, अच्छे हथियारों का अभाव था और हो सकता है कि उनके क्रांतिकारी योद्धा मुगल सैनिकों के बराबर प्रशिक्षित भी न रहे हों। परन्तु सैन्य अनुशासन की निश्चय ही वहां कोई कमी नहीं थी। जिस अनुशासन और दृढ़ता का परिचय उनके योद्धाओं ने दिया, उसकी मिसाल ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलती।

तीसरे दिन फिर भयंकर संग्राम हुआ। इसके बारे में एक इतिहासकार का कहना है कि जाटों का आक्रमण इतना प्रबल था कि शाही सेना के पैर उखड़ ही गये थे, परन्तु तभी हसनअली खां के नेतृत्व में एक नयी एवं ताजा दम मुगल सेना आ गयी। इस सेना ने गोकुलसिंह की विजय को पराजय में बदल दिया और बादशाह आलमगीर की इज्जत बचा ली।

जाटों के पैर तो उखड़ गये परन्तु फिर भी अपने घरों को नहीं भागे। उनका गन्तव्य बनी तिलपत की गढ़ी, जो युद्ध क्षेत्र से २० मील दूर थी। तीसरे दिन से वहां भी भीषण युद्ध छिड़ गया और तीन दिन तक चलता रहा। भारी तोपों की मार के आगे तिलपत की गढ़ी भी इससे ज्यादा नहीं टिक सकी और उसका पतन हो गया। तिलपत के पतन के बाद गोकुलसिंह और उसके ताऊ उदयसिंह को सपरिवार बंदी बना लिया गया। उसके सात हजार साथी भी बंदी हुए। उन सबको जनवरी १६७० में आगरा लाया गया।

औरंगजेब पहले ही आ चुका था और आगरा के लालकिले के दीवाने आम में आश्वस्त होकर विराजमान था। सभी बंदियों को उसके सामने पेश किया गया।

औरंगजेब ने उनसे कहा– "जान की खैर चाहते हो तो

इस्लाम कबूल कर लो। रसूल के बताये रास्ते पर चलो। बोलो क्या कहते हो– इस्लाम या मौत।''

अधिसंख्य जाटों ने कहा– ''बास्सा, अगर तेरे खुदा और रसूल का रास्ता वही है जिस पर तू चल रहा है तो हमें तेरे रास्ते पर नहीं चलना।''

औरंगजेब ने गोकुलसिंह और उदयसिंह को डांटा– ''तुम इन बेवकूफों को समझाते क्यों नहीं?''

गोकुलसिंह अपने होंठ चबाते रहे। उत्तर उदयसिंह ने दिया, ''इसलिए हुजूर कि मैं भी इन्हीं की तरह बेवकूफ हूं, इन्हें आप ही समझाइये।''

गोकुल बार-बार अपना सिर और सीना तान देते थे। पीछे से सिपाही बार-बार टहोका देते, अदब से सिर व निगाहें झुकाकर खड़े होने की कहते। तीसरी बार वह भड़क उठे। दीवाने आम की दीवारें उनकी आवाज से कांप उठीं– ''हरामी, एक घूंसे में प्राण निकल जाते, पर.... नहीं खड़ा हूंगा जैसे तू कहता है। बहन-बेटी भगाई है तेरे बादशाह की?

औरंगजेब ने अपने क्रोध पर संयम किया, फिर भी पूरी तरह न कर सका। गोकुलसिंह से कहा– ''बदजात, कुछ इनसे भी कहेगा या सिर्फ सभी को मरवाने के लिए पैदा हुआ था।''

गोकुलसिंह खामोश, सिर तान कर खड़े रहे। बोले कुछ नहीं। उधर औरंगजेब ऐसे विकट सेनानी को खोना नहीं चाहता था। इस्लाम की तलवार बनाकर उपयोग करना चाहता था। उसने कहा – ''अब भी वक्त है, वर्ना तुम सबके टुकड़े-टुकड़े करके कुत्तों और चील-कौवों को खिला दिये जायेंगे और तुम्हारे लड़के-लड़कियों को मुसलमान बना दिया जायेगा।''

गोकुलसिंह के शरीर में भूचाल-सा उठा। गले से लेकर पैर

तक कसी लोहे की जंजीरें तड़तड़ा उठीं। भभकते हुए बोले तो दीवाने आम गूंजने लगा– "क्या फिर ये बदजात नहीं रहेंगे? बेसहारा बच्चे तुझ जैसे शरीफजादे से उम्मीद ही क्या कर सकते हैं। थू है तुझ पर।" उन्होंने सचमुच दीवाने आम में थूक दिया।

मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक, और बादशाह की कुव्वत सजाए मौत तक–– और दुर्भाग्य से औरंगजेब में दोनो ही विशेषताएं थीं।

अगले दिन गोकुलसिंह और उदयसिंह को आगरे की कोतवाली पर लाया गया, उसी तरह बंधे हाथ, गले से पैर तक लोहे में जकड़ा शरीर फिर भी किसी देवता की तरह भव्य और दर्शनीय। जनसमूह की सांसें थम गयीं, आंसू उमड़ पड़े। गोकुलसिंह की सुडौल भुजा पर जब जल्लाद का पहला कुल्हाड़ा चला तो हजारों का जनसमूह हाहाकार कर उठा। चौड़ी कुल्हाड़ी से छिटकी हुई उनकी बायीं भुजा चबूतरे पर गिरकर फड़कने लगीं।

परन्तु उस वीर का मुख ही नहीं शरीर भी निष्कम्प था। उसने एक निगाह फौव्वारा बन गये कंधे पर डाली और फिर जल्लाद को देखने लगा कि दूसरा वार करें। परन्तु जल्लाद जल्दी में नहीं था, उन्हें ऐसे ही निर्देश थे.... दूसरे कुल्हाड़े पर भी हजारों लोग आर्त्तनाद कर उठे। उनमें हिन्दू और मुसलमान सभी थे... अनेकों ने आंखें बन्द कर लीं.... अनेक रोते हुए भाग लिये... कोतवाली के चारों ओर मानों प्रलय हो रही थी... एक को दूसरे का होश नहीं था.... वातावरण में एक ध्वनि थी------"हे राम......या रहीम।"

इधर आगरे में गोकुलसिंह का सिर गिरा, उधर मथुरा में केशवराय जी का मंदिर। मानों कि दोनों दो शरीर एक प्राण रहे हों।

●

वीर शिरोमणि राजाराम

रामसिंह फौजदार संस्थापक, जाट समाज पत्रिका

मुगलकाल के सशक्त स्थल आगरा के आस-पास शाही खजानों पर धावा बोलकर लूट और सिनसिनी तक फैले विशाल जंगल में लुप्त हो जाने वाले वीर, ब्रज की जनता के हृदय सम्राट् वनते जा रहे थे।

किसानों के शोषण, अन्याय और लूट के प्रतिकार के रूप में पनपे इन किसान पुत्रों का गुरिल्ला युद्ध शैली का कोई जबाव न था। अपने पूर्वज गोकुलराम की मुगलों द्वारा की गई बर्बर हत्या इनके लिए प्रेरणा वन गई।

सिर्नसिनी का राजाराम और चाहरवाटी का रामकी चाहर एक प्राण दो शरीर। घोड़ों की पीठ ही इनका आरामगाह था और वही उनकी कर्मस्थली। मीलों ४०० सवार आंधी की तरह दौड़ते चले जाते, शाही खजाने लूटते और फिर मुगल सल्तनत को ठेंगा दिखाते हुए गायब। बादशाह औरंगजेब को खुलेआम चुनौती।

वलिष्ठ, सुदर्शन, चरित्रवान, लम्बे- चौड़े इन दो जवानों पर उनकी कमान के योद्धाओं का गर्व था।

राजाराम को अपने पिता भज्जा और ताऊ ब्रजराज से ३०० सवारों की संगठित कमान मिली। राजाराम का अभिन्न मित्र रामकी चाहर की अनुपम वीरता, संगठन क्षमता और गजब के छापामार नेतृत्व ने इस लघु टुकड़ी में जैसे नया जोशीला रंग भर दिया था। स्वाधीनता की भावना से ओत-प्रोत किसान हितैषी इन नवयुवकों के इरादों को डिगाना मौत के भी बस की बात न थी।

सिनसिनवार, चाहर, सोगरिया और कुन्तल (खूंटल) जाटों की संयुक्त शक्ति इस संगठन की आधारशिला थी। फौज का कमांडर (फ़ौजदार) रामकी चाहर था और संयुक्त संगठन का युवा सरदार था राजाराम।

सन् १६७२ तक इन्होंने ४० गांवों की स्वतंत्र जमींदारी बना ली- और मुगल दरबार का लगान बन्द कर दिया। अनेक मुगल सेनापति इन्हें सबक सिखाने आये और मुंह की खाकर रह गये। अन्ततः औरंगजेब ने समझौता करने के लिए इन्हें दरबार में आमंत्रित किया।

औरंगजेब के निमंत्रण के विषय पर आगरा, मथुरा और भरतपुर की जाट पालों (खापों) की बहुत बड़ी पंचायत हुई। पंचायत ने औरंगजेब के निमंत्रण को स्वीकार कर लिया।

औरंगजेब ने अपने दरबार में राजाराम और उसके साथियों का भारी सत्कार किया। औरंगजेब के लूटमार बन्द करने के अनुनय और राजाराम के आश्वासन पर समझौता हुआ। समझौते के फलस्वरूप राजाराम को ५७५ गांवों की ज़मींदारी और सैनिक जागीर (पट्टा) का अधिकार दिया गया।

सैनिक जागीर में मिली धरती को किसानों में बांट दिया गया। इस कार्य में राजाराम को सम्पूर्ण क्षेत्र में अपूर्व सम्मान के साथ-साथ अपने समस्त किसान भाईयों का अथाह प्रेम मिला।

किसान युवक बहुत बड़ी संख्या में अपने इन युवा नेताओं के अनुयायी हो गये। धीरे-धीरे सैन्यबल बढ़ने लगा। जंगलों में इन बीस हजार (२०, ०००) युवकों की सैनिक प्रशिक्षण देकर रामकी चाहर ने कुशल सैनिक बना दिया। फिर बीहड़ जंगलों में ही स्थान-स्थान पर छोटी-छोटी गढ़ियों का निर्माण किया गया। सिनसिनी पैंघोर, सोगर, साँख, अवार, पींगौरा, इन्दौली, इकरन,

अघापुर, अडींग, अछनेरा, गूजर सौंख आदि में मुगल तोपखाने को सहने वाली मिट्टी की गढियां तैयार कर लीं।

सन् १६८१ ई० में जून माह में आगरा के निकट के एक गांव ने लगानबन्दी की घोषणा करके मुगल दरबार को चुनौती दे दी। शाही सेना को इस गांव ने ही युद्ध में हरा दिया और आगरा परगने के फौजदार इब्राहीम हुसैन 'मुल्तफात खां' को जीवित पकड़ लिया और जूतों से अच्छी तरह पिटाई करके छोड़ दिया। बाद में ६ जुलाई १६८१ को उसकी मृत्यु हो गई।

सन् १६८३-८४ में राजाराम और रामकी चाहर आगरा-दिल्ली, आगरा-बयाना, आगरा-ग्वालियर और मालवा के मध्य क्षेत्र के बेताज बादशाह थे। इन रास्तों से कोई शाही खजाना बिना लूटे नहीं जा सकता था। व्यापारियों के कारवां २०० रु० राहदारी कर अदा करके बहुत ही सुरक्षित यात्रा कर सकते थे। इस प्रकार इन किसान क्रांतिकारियों की मिट्टी की गढ़ियां मजबूत होने लगीं और सैनिक भी नये-नये हथियारों से सजने लगे।

सन् १६८४ से १६८८ तक सूबेदार हाजी मुहम्मदशफी खां, मीर अबुलफलज तुरानी सेनाध्यक्ष आगहर खां, मुगल सेनापति कोकलतास जफरजंग, सम्राट् का पोता शाहजादा बेदार बख्त, गुजरात का सूबेदार मीर इब्राहीम हैदराबादी उर्फ महावत खां, औरंगजेब का चाचा अमरी-अल-उमरा शाइस्ता खां जैसे मुगल सिद्धहस्त सैनिक अधिकारियों को जाटों की छापामार सेना ने धूल चटा दी।

अमर शहीद वीरवर गोकुलराम (गोकुला) की कुल्हाड़ा से धीरे-धीरे एक-एक अंग काट-काटकर की गई दर्दनाक हत्या के प्रतिशोध की ज्वाला इन वीरों के हृदय में धधक रही थी। मुगलों के पूर्वज अकबर के मकबरे (सिकन्दर) को २७ फरवरी, १६८८ में

लटूकर जाटों ने पुराना हिसाब बराबर कर लिया।

शेखावटी में चौहान और शेखावत राजपूतों में आपस में ठन गई। चौहानों ने राजाराम को अपनी सहायतार्थ बुलावा भेजा। शेखावतों ने पहले ही मेवात के फौजदार मुरतिजा खां को अपनी सहायता के लिए आमंत्रित कर लिया था। चौहान और जाटों की सेना के विरुद्ध बीजल गांव के पास शेखावत और मुगलों की पूरी शक्ति आ खड़ी हुई। मुगल सेना में शहजादा राजा अनिरूद्ध सिंह, कोटा का महाराजा किशोरसिंह हाड़ा और इनके जागीदार अपनी विशाल फौजों के साथ आये।

४ जुलाई १६८८ को बीजल गांव (रेवाड़ी के दक्षिण में १८ मील पर अलवर तहसील में बीजवाड़ा के नाम से आज भी है) के पास भंयकर युद्ध हुआ। असंख्य सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए। इसी युद्ध में राजाराम और रामकी चाहर दोनों योद्धा एक साथ शहीद हो गये। इनके गिरते ही विजयश्री मुगलों के हाथ चली गई।

राजाराम के सिर को काटकर मुगल सेनापति ने औरंगजेब की आज्ञा से आगरा की कोतवाली पर लटका दिया। १८ वर्ष पूर्व इसी कोतवाली के चबूतरे पर गोकुल का वध किया गया था।

अपने वीर सेनापति रामकी चाहर के शव को कुछ जाट सैनिक रणक्षेत्र में उठा ले आये। फतेहपुर सीकरी और किरावली के मध्य राजमार्ग के किनारे ही भारी मन और आंसुओं के साथ दाह-संस्कार कर दिया। यह स्थान चाहर, सिनसिनवार और सोगरिया पालों (खापों) की सीमास्थली है।

उस वीरपुरुष की स्मृति में एक चबूतरा बनाया गया। अब तक यह परम्परा थी कि कोई भी व्यक्ति इन पालों के पास से गुजरता था तो उस चबूतरे पर अवश्य कुछ देर बैठकर या अपनी श्रद्धांजलि देकर जाता था। ●

उपेक्षित जाट चूड़ामन

(देहान्त १७२१ ईस्वी)

उपेक्षित जाट चूड़ामन

रामसिंह फौजदार

ब्रजराज और उसके बड़े पुत्र भावसिंह एवं भाई भज्जा की सन् १७०२ ई० के युद्ध में मारे जाने के पश्चात् एक विशाल पंचायत सिनसिनी में हुई। इस पंचायत में सिनसिनवारों के अतिरिक्त अन्य डूंग गोत्रों ने भी भाग लिया। पंचायत के राजाराम के पुत्र फतेहसिंह का जातीय एकता, नेतृत्व तथा संगठन क्षमता में अयोग्य समझा। ब्रजराज के दूसरे पुत्र चूड़ामन को उसकी नेतृत्व क्षमता, कार्यपद्धति एवं पिछले वीरता पूर्ण संगठनात्मक कार्यों के कारण सिनसिनवार जाट पंचायत का प्रधान सर्वसम्मति से चुन लिया गया।

सिनसिनी आने से पूर्व चूड़ामन ने क्रांतिकारियों को संगठित करके कठूमर में केन्द्र स्थल बनाया था। उसने अनेक बार शाही परगनों और खजानों को लूटा था। अतः पंचायत ने उसकी क्षमताओं को पहचानकर उसे अपना नायक बनाया था काठेड़ तथा ब्रज जनपद के बहादुर राजपूत, गूजर, मीणा, मेव, मुस्लिम जागीरदारों का जाटों के संगठन को नैतिक समर्थन, विश्वास एवं प्रेम प्राप्त था।

चूड़ामन गठे हुए बदन का छरहरा युवक था, जिसके सिंह वक्ष, आजानु-बाहु तथा चमकीले नेत्रों में स्वाधीनता की चमक थी, हृदय में अत्याचारों के विरुद्ध क्रान्ति की ज्वाला धधक रही थी। वह बड़ा नीतिनिपुण, कुशल, साहसी, दिलेर योद्धा, गुरिल्ला युद्ध-संचालक, दृढ़ संगठक, पारदर्शी, अवसरवादी, सफल मित्र

और धूर्त राजनयिक था। अपनी कुशलता या सूझ-बूझ के कारण उसने दूरस्थ परगने तथा गांवों में आबाद अन्य जाटों को पुनः अपनी भूमियों पर बुलाकार जातीय शक्ति को संगठित किया। उसने किसान, मजदूर तथा जाट एकता, स्वदेश प्रेम, धर्म तथा संस्कृति की भावना को दृढ़ किया।

जाट परिवार अपने गांवों में पुनः आकर ही नहीं बसे, बल्कि अपनी सुरक्षा के लिए टूटी-फूटी झोपड़ी तथा ध्वस्त गढ़ियों की मरम्मत करना शुरू कर दिया अथवा नवीन गढ़ियां बनवाई। जाट सरदार ने खेती की उपज तथा पशु पालन को विशेष महत्व दिया काश्तकारी तथा गढ़ियों के निर्माण में योग देने के लिए उसने असंख्य चमार परिवारों को जाट प्रधान गांवों में लाकर बसाया।

चूड़ामन के चरित्र में जाटों के अड़ियलपन के साथ-साथ मराठों की चुतरता तथा राजनयिक सूक्ष्म दूरदर्शिता कां सुन्दर सम्मिश्रण था। उसमें शत्रु की निर्बलता से लाभ उठाने की योग्यता अन्य जाट सरदारों से अधिक थी। वह दृढ कुशल व्यावहारिक राजनीतिज्ञ था, जो किसी के समक्ष अपना मस्तक नहीं झुकाता था।

उसने जाटों का नेतृत्व सम्भालकर एक लुटेरा कही जाने वाली जाति को अठारहवीं शताब्दी की राजनीति और मुगल साम्राज्य में विशिष्ट सम्मान तथा महत्वपूर्ण स्थान दिलवाया था। वह भावुकता को नीति पर प्रभावी नहीं होने देता था। उसका मस्तिष्क सदैव ठंडा क्रोधावेश से दूर रहता था। वीरता तथा बुद्धिमता इन दो गुणों के मेल ने ही चूड़ामन को इस योग्य बनाया कि वह जाटों की विद्रोही शक्ति को राज्य शक्ति के रूप में बदल सका।

चूड़ामन के ब्रज में बिखरी हुई जाट शक्ति को एकत्रित किया एवं एक विशाल अश्वारोही एवं पैदल सैनिक टुकड़ियों का गठन

करके अपनी सैन्य शक्ति को बढ़ा लिया। उसने अपनी इन टुकड़ियों को मुगल सेना नायकों से मुठभेड़ करने की शिक्षा दी एवं बन्दूक, तलवार, भाले, बर्छी, आदि हथियारों से सुसज्जित करके सैनिकों की नियमित परैड का अभ्यास भी करने लगा। अपना तोपखाना तैयार किया। धीरे-धीरे उसकी शक्ति १४ हजार बन्दूकों से सज्जित सवारों तक पहुंच गयी और वह ब्रज का बेताज जाट राजा कहलाने लगा।

सन् १७०४ में उसने अपनी जन्मभूमि सिनसिनी पर अधिकार कर लिया, जिसे कि उसके पूर्वज न ले सके थे। चूड़ामन के छापों के भय के कारण शाहीमार्ग बन्द हो गये। ९ अक्टूबर १९०५ को शहजादा बेदार बख्त का श्वसुर एवं आगरा के किलेदार मुख्तयार खां ने एक भारी मुगल सेना के साथ पुनः सिनसिनी पर कब्जा कर लिया। उसके पास महत्वपूर्ण जिन्सी तापेखाना दल था।

सन् १७०७ ई० के पश्चात् चूड़ामन ने जाट क्रांतिकारियों का भीषण आंतक पैदा कर लिया। चूड़ामन ने अऊ, कांमा, पहाड़ी, कठूमर और बरौदा मेव परगनों की सीमा पर डीग के पश्चिम की और ११ मील हर दलदल और विस्तृत सघन जंगल के बीच में थून नामक नया गांव बसाया। गांव के चारों और कच्चा परकोटा एवं खाई खोदकर सामरिक दृष्टि से सुरक्षित कर दिया।

बहुत कम समय में ही थून गढ़ी में ८० गांव एवं सिनसिनी और थून किले के अन्तर्गत ११० गांवों का एक अर्द्ध स्वतंत्र जाट सत्ताधारी राज्य बन गया। ठाकुर चूड़ामन द्वारा इन गांवों से खिराज (लगान) वसूल किया जाता था। वह लूट का माल इन गढ़ियों में रखता था। खज़ाने की रक्षा के लिए उसने चमार परिवारों को नियुक्त किया। गढ़ी की सुरक्षा के लिए एक छोटा सा जिन्सी तोपखाना भी तैयार किया।

८ जून १७०७ को बादशाह की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियों मुहम्मद आजम शाह के पुत्र बेदार बख्त, वाला शाह और बहादुर की सेनायें जाजऊ के मैदान में आमने-सामने जम गई। चूड़ामन ने इससे अवसर का लाभ उठाया और उसने दोनों पक्षों को बारी-बारी से लूट लिया। इस लूट में चूड़ामन को अथाह सम्पत्ति हाथ लगी और मुगल सेना पर उसकी धाक भी जम गई। साथ ही उसने सिनसिनी पर अधिकार कर लिया।

बहादुरशाह ने जाट उपद्रव को दबाने हेतु सेना भेजने की आज्ञा दी किन्तु चूड़ामन समझौते के लिए वजीर मुनईम खां से बात कर रहा था। वजीर ने अपना पक्ष मजबूत करने की दृष्टि से १६ सितम्बर, १७०७ को समझौता करा दिया। बादशाह ने चूड़ामन को १५०० जात ५०० सवार का मनसब प्रदान किया। किन्तु समस्त जाट जमींदार बहादुरशाह के पक्षधर न हो सके। शाही दबाब बढ़ने पर चूड़ामन के इशारे पर सिनसिनी की गढ़ी की मरम्मत प्रारम्भ हो गई।

नवम्बर, १७०७ के अन्तिम सप्ताह में रिज़ा बहादुर ने मुगलिया दस्तों के साथ सिनसिनी को घेर लिया। २ दिसम्बर को भयंकर मुठभेड़ हुई। इस युद्ध में एक हजार जाट योद्धा मारे गये और मुगलों को १० गाड़ी हथियार प्राप्त हुए। इस अवसर पर चूड़ामन अपनी सैन्यशक्ति के साथ सिनसिनी के बाहर था। इस प्रकार से उसनें एक प्रकार सें बड़ा मनसब प्राप्त करने के लोभ में चुप रहना ठीक समझा।

चूड़ामन को मनसब प्रदान करने सम्राट् ने उसे आगरा सूबे का सजग प्रहरी बनाया। इस प्रकार इस क्षेत्र में कुछ समय के लिए शान्ति छा गई। मुगल बादशाह के साथ होते हुए भी हिन्दू धर्म के नाम पर राजपूत राजाओं का भी उसने कोई विशेष अहित नहीं

किया। सम्राट ने उसके मनसब में वृद्धि की।

सन् १७०९-१० में सिक्खों ने विद्रोह कर दिया। सिक्खों को दवाने हेतु आसद खां, मौहम्मदअमीन खां (सूबेदार इलाहाबाद), चिर्नकिलिच खां, सैयदअब्दुल्ला खां बराह, दिल्ली मेवात के फौजदार और चूड़ामन को भेजा गया। सिक्खों के विरुद्ध अभियान में चूड़ामन दिल से मुगलों के साथ न था क्यों कि सिक्ख उसके ही भाई-बन्धु थे।

२७ फरवरी १७१२ को लाहौर में बहादुरशाह की मृत्यु हो गई। चूड़ामन उस समय उसके साथ ही था। सम्राट् के चारों पुत्र उत्तराधिकार के लिए लड़ पड़े। जहां दारशाह अपने तीन भाईयों को मारकार स्वयं गद्दी पर बैठ गया।

१० जनवरी १७१३ को शाह एवं फरुखसियर में युद्ध हुआ। चूड़ामन दोनों को ही लूटकर थून आ गया। फरुखसियर सम्राट् बना। राज्य की मुख्य शक्ति दो सैयद बंधुओं के हाथ में आ गई। सैयद, अब्दुला वजीर बना और सैदय हुसैन अली प्रधान सेनापति। चूड़ामन पर सैयद बन्धुओं का विशेष भाव रहा। खाब-ए-दौरा ने चूड़ामन की बादशाह से भेंट करायी। बादशाह ने उसे दिल्ली से लेकर चम्बल के घाट तक शाही मुख्य मार्ग का कार्यकारी अफसर (शाह राह) नियुक्त कर दिया।

चूड़ामल के इस पद परिवर्तन पर टिप्पणी करते हुए प्रो० कानूनगों ने लिखा है "एक भेड़िये को भेड़ों के रेबड़ का रखवाला बना दिया गया।

चूड़ामन ने इस पद का भरपूर लाभ उठाया और वह बहुत ही मुश्तैदी से जबर्दस्ती 'राह कर' वसूलने लगा। बादशाह ने सवाई जयसिंह को चूड़ामन को दबाने की आज्ञा दी। जयपुर, कोटा और बूंदी के राजाओं ने संयुक्त रूप से थून को २० माह तक घेरे रहे

लेकिन परिणाम कुछ भी न निकला। चूड़ामन ने सैयद बन्धुओं की सहायता से ५० लाख रुपये में सम्राट् से समझौता कर लिया।

सन् १७२० में होडल की लड़ाई में उसने सैयद अब्दुला और सम्राट् के शिविरों को लूटकर लगभग साठ लाख रुपये का माल प्राप्त करके अपने ५० लाख वसूल कर लिये। आमेर को दबाने के लिए जोधपुर के अजीतसिंह से दोस्ती कर ली।

चूड़ामन के भतीजे बदनसिंह को उसकी यह नीति पसन्द न थी। वह जाटों को विद्रोहियों की भांति नहीं बल्कि शासकों की भांति रहने का पक्षधर था। उसके मतानुसार प्रचुर धन, शक्ति से सम्पूर्ण राज्य को एक जगह टिककर सम्भालना चाहिए। चूड़ामन का पुत्र मोकहमसिंह क्रोधी (असंयत) स्वभाव का था लेकिन वह अपने पिता की नीतियों का कट्टर समर्थक था।

इस प्रकार चूड़ामन की विचाराधारा के सरदार खेमकरण सोगरिया, विजयराज गडसिया, छतरपुर का फौजदार फतेहसिंह और ठाकुर तुलाराम समर्थक थे। बदनसिंह के समर्थक फौजदार अनूपसिंह राजाराम का पुत्र फतेहसिंह गायड़ू और हलेना के ठाकुर तथा अन्य जातियों के मुखिया भी थे। बदनसिंह ने चूड़ामन के समर्थन राजा जयसिंह से सम्पर्क बनाया हुआ था। हालांकि सन् १७१९ तक आते-आते चूड़ामन शाही षड़यंत्रों का सफल कूटनीतिज्ञ हो गया था।

सिनसिनी जागीर चूड़ामन के विशाल राज्य थून का एक अंग बन चुकी थी। इधर बदनसिंह का परिवार एवं महत्वाकांक्षा बढ़ रही थी जिसके लिए उसकी अपनी जागीर की आय अपर्याप्त थी। अपनी आय बढ़ाने हेतु उसने चूड़ामन के सामने जमींदारी के मालिकाना हक तथा बंटवारे की मांग प्रस्तुत की।

मौहकमसिंह के क्रोधी स्वभाव के कारण शीघ्र ही पारिवारिक विवाद उत्पन्न हो उठे। चूड़ामन भी अपने राज्य को बंटता हुआ न देख सकता था। इससे जाट संगठन कमजोर होता जिसे कि मुगल या अन्य कोई भी शक्ति कुचल देती। फिर भी चूड़ामन ने बदनसिंह को जमींदारी का कुछ भाग देकर पारिवारिक विवाद को निपटाने का प्रयास किया। लेकिन मौहकमसिंह की जिद्द, हठधर्मी और ईर्ष्या ने आपस में द्वेष और बढ़ा दिया। बदनसिंह और उसके भाई रूपसिंह को कैद कर लिया गया। जिन्हें बाद में जाट पंचायत के दबाव के कारण छोड़ दिया। बदनसिंह आगरा होता हुआ जयपुर चला गया।

चूड़ामन की मृत्यु समय तथा स्थान के बारे में पूर्ण प्रमाणों का अभाव है। शिवदास लखनवी, गुलामहुसैन, मीरगुलाम अ़ली आदि लेख़कों ने चूड़ामन की मृत्यु के बारे में लिखा है—

ठा० चूड़ामन का एक संबंधी विशाल सम्पत्ति, छोड़कर मर गया। उस सम्पत्ति पर मौहकमसिंह एवं उसके अपने बड़े भाई जुलकरन में झगड़ा हो गया। चूडामन ने जब मौहकमसिंह को समझाया तो उसने अपने पिता की बात नहीं मानी। जिसके कारणं चूड़ामन की भावनाओं को ठेस पहुंची और उसने एकबाग में जहर खा कर आत्महत्या कर ली। उसकी मृत्यु का समय २२ सितम्बर से २० अक्टूबर १७२१ ई० के मध्य माना जाता है।

विषपान के बाद चूड़ामन अपने घोड़े पर सवार होकर चल दिया और जब वह तहसील नदवई के दक्षिण में ५ मील न्योठा नामक ग्राम में पास पहुंचा, तो उसकी तबीयत एकाएक खराब होने लगी और वह घोड़े से उतर कर एक पीपल के पेड़ की छाया में लेट गया। विषपान का समाचार सुनते ही उसके अंगरक्षक तथा सहयोगी तलाश में निकल पड़े। उनको ठा० चूड़ामन बेहोशी की हालत में मिला। उन्होंने ज्योंही उसके मुंह में पानी डाला उसने

अन्तिम बार दीर्घ श्वांस ली। इस स्थान पर अभी तक उसकी स्मृति के एक थान (चबूतरा) बना हुआ है। और इस पर एक वीरपुरुष की मूर्ति लगी हुई है। इसी के नजदीक प्राचीन कुंआ तथा पीपल का पेंड़ हैं। न्यौठा निवासी इसको न्यौठा का बाबू तथा अन्य गांवों में 'जाटौली का बाबू' कहते हैं। धौलपुर बाड़ी बसैड़ी तहसील के गांवों में 'जाटौली के बाबू' की स्मृति में अनेको पूज्य थान बने हैं और ग्रामीण उसके प्रति कृतज्ञता प्रगट करते हैं।

●

गोहदपति महाराजा भीमसिंह राणा

गोहद में जाटों के राज्य की स्थापना सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सिंहनदेव राणा ने की थी। इनके पश्चात् गोहद पर महाराजा भीमसिंह ने गोहद पर शासन किया। इनका गोहद के शासकों में उच्चस्थान है। महाराजा भीमसिंह राणा का शासनकाल सन् १७०३ से लेकर १७५६ तक रहा। इनके देहावासान के पश्चात् राणा छत्रसिंह सन् १७५७ में गोहद की गद्दी पर बैठे और सन् १७८५ तक शासन किया। गोहद के साथ-साथ जाट शासकों का ग्वालियर दुर्ग पर भी काफी समय तक आधिपत्य रहा।

ग्वालियर का दुर्ग मुगलों के अधीन था और इसके संरक्षण का भार विलासी सूबेदार अलीखां पर था। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों में सत्ता के लिए संघर्ष चल रहा थां। महाराजा भीमसिंह राणा ने भी राज्य विस्तार की योजना बनाई। मालवा से १७३६ में लौट कर उन्होंने ग्वालियर पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। मराठे भी ग्वालियर पर अपना आधिपत्य चाहते थे। महत्वाकांक्षा पूर्ण करने के लिए जाटों तथा मराठों में संघर्ष भी हुआ। इस संघर्ष में सूबेदार अलीखां ने महाराजा भीमसिंह राणा का साथ दिया और ग्वालियर का किला उनके सुपुर्द कर दिया। मराठों को मुंह की खानी पड़ी।

गोहदपति महाराणा भीमसिंह राणा ग्वालियर के शासक बने और दुर्ग पर अपनी पताका फहरा दी। कहा जाता है कि ग्वालियर पर आक्रमण के समय उनके पास ७००० सैनिक थे। ग्वालियर पर शासन के पश्चात् उन्होंने कई सुधार के कार्य किए।

मराठे प्रतिशोध की ज्वाला में धधक रहे थे। अतः लगभग सोलह वर्षों बाद सन् १७५६ में उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाकर महाराणा को पराजित करने के लिए आक्रमण कर दिया। जाटों और मराठों में घमासान युद्ध हुआ। मराठों ने महाराणा को घेर लिया और तलवार से कई वार किए। महाराणा को उनके सैनिक घायल अवस्था में किले में ले गए। काफी चिकित्सा की गई परन्तु अधिक रक्तस्राव के कारण उनकी हालत बिगड़ गई और किले में ही उनका देहान्त हो गया। किले में भीमताल के तट पर उनका दाह-संस्कार किया गया। बाद में यहां पर महाराजा के नाम पर ऐतिहासिक छत्री बना दी गई।

गोहद नरेश महाराजा भीमसिह राणा के राजकवि मदन ने **भीमसिंह रासो** काव्य की रचना की थी। काव्य में से कुछ पंक्तियां निम्नलिखित हैं, जिनके द्वारा उनकी महानता, शौर्यबल, संगठनशक्ति तथा प्रतापी राजा होने का संकेत मिलता है।

(१)

कोट, दरवाजे, आवाजे, राजपूतन की
अति बल शस्त्र में शत्रुन को मोहत है।
चारहि वर्ण कुल धर्म की करनपुर,
पंड़ित पुराण सुर ज्ञान की जौहत है।।
'मदन' कहत— महारानी कुल दान जपें,
भीमसिह राणा को विरद सब सोहत है।
मारि मदावर को छुड़ायौ मान सारी,
ऐसो वसुलि निकट् में विकट गढ़ गोहद है।

(२)

उत्तर ते दक्षिण लो दावी सीमा भीमराणा,
मारि पेशवानि काटे सिर मर-हट्ठा है।

अठारह सौ बारह में प्रतापसिंह राजा भये,
तेरह सौ में छत्रपति छत्र छयौं एक ही छत्ता है।
प्रबल प्रतापी लोकेन्द्र भूप गोहदपति,
छायो यश हिन्दू में महान जाट जत्था है।
दक्षिणा ते धायौं धूमधाम ते मरहठा दल,
ग्वालियर पे युद्ध में मात खायो मरहट्ठा है।

भीमताल और छत्री

ग्वालियर किले पर विजय पाने के पश्चात् महाराजा भीमसिंह राणा ने सन् १७५३-५४ में भीमताल का निर्माण करवाया था। इसी के तट पर राणा जी का दाह-संस्कार किया गया था। भीमताल और छत्री मध्यप्रदेश शासन के पुरातत्त्व विभाग द्वारा संरक्षित हैं। भीमताल की लम्बाई-चौड़ाई लगभग २००'x २००' व गहराई ३०'x३५' है। यह जल से भरा रहता है।

महाराजा भीमसिंह राणा के देहान्त के बाद उनके उत्तराधिकारी महाराजा छत्रसिंह राणा ने भीमताल के तट पर ऐतिहासिक छत्री का निर्माण करवाया। यह छत्री अपने आप में एक अनूठा स्मारक है। यह छत्री, जो भूरे पत्थर से बनी है, तीन मंजिल की है। चारों और चार फुट लम्बा बंरामदा बना हुआ है। गुम्बद की ऊंचाई ८' है, जो गोल महेराबदार ८ पत्थरों के सहारे बनाया गया है। भूमि से लेकर ऊपर तक इस छत्री की कुल ऊंचाई ५३' है

महाराजा छत्रसिंह राणा

गोहद नरेश महाराजा भीमसिंह राणा के देहावसान के पश्चात् ग्वालियर का किला मराठों के अधिकार में आ गया था। यह पराजय गोहद नरेश के बाद के शासक को चुभती रही। राणा छत्रसिंह ने १७५७ में गोहद का राज्यभार सम्भाला और वे गद्दी पर १७८५ तक रहे। आप हिन्दूकुल सूर्य महाराज सूरजमल के पुत्र महाराजा जवाहरसिंह के परम मित्र थे। आप गोहद के महानतम शासक माने जाते हैं। आपका शासन काल गोहद शासन का स्वर्णिमकाल माना जाता है।

मराठे, राणा भीमसिंह के काल से ही जाटों को अपना शत्रु मानने लगे थे। राणा छत्रसिंह भी नहीं भूले थे कि ग्वालियर का किला उनके पूर्वजों से छीना गया है। अतः संघर्ष को टाला न जा सका और महादजी शिंदे से युद्ध होता रहा। अगस्त, १७८० में मराठों को मुंह की खानी पड़ी और राणा जी ने पुनः गोहद की पताका ग्वालियर दुर्ग पर फहरा दी। सर्वत्र खुशी की लहर दौड़ पड़ी। गोहद की कीर्ति-पताका कई वर्षों तक फहराती रही।

गोहद का राज्यभार सम्भालना भी अनिवार्य था। अतः ग्वालियर दुर्ग की प्रशासन-व्यवस्था का भार राणा जी अपनी महारानी को सौंप कर गोहद में रहने लगे। महादजी शिंदे राणा जी को नीचा दिखाने के लिए षड्यंत्र रचने लगे। उन्होंने महारानी के विश्वस्त रक्षक मोतीमल को अपनी ओर कर लिया। उसने पहले जाटों की अनेक गढ़ियों पर आक्रमण किए और फिर सन् १७८३ के अन्तिम दिनों में ग्वालियर के किले पर आक्रमण कर दिया। शिंदे ने

ग्वालियर के किले को घेर लिया। यह संघर्ष लगभग एक मास तक चला। इस समय राणा जी गोंहद में थे।

मराठों की इस चाल का राणा और रानी को पता नहीं था कि उनके अति विश्वस्त रक्षक को धोखे से अपनी ओर मिला लिया है। मोतीमल के साथ राणा जी के दो हजार सैनिक भी मराठों से जा मिले थे। अब जाटों की पराजय निश्चित थी। जाटों ने मराठों से काफी संघर्ष किया परन्तु पराजय का सामना करना पड़ा। रानी ने ६०० सैनिकों और अनेक दासियों सहित आत्मबलिदान कर दिया ताकि बन्दी न बनाए जा सकें। सन् १७८४ में महादजी शिन्दे ने दल-बल सहित गोहद पर आक्रमण कर दिया और गोहद पर अधिकार कर लिया। राणा छात्रसिंह को बन्दी बना कर ग्वालियर के किले में लाया गया और महादजी शिंदे ने १७८५ में विष देकर हत्या कर दी।

जिस स्थान पर रानी ने सैनिकों और दासियों के साथ आत्मबलिदान किया था, वह आज 'जौहर कुंड' कहलाता है। राणा जी ने दो महीने तक शिन्दे का डट कर मुकाबला किया था परन्तु करौली के शासक माणिकपाल के विश्वास के कारण ही राणा जी बन्दी बनाए जा सके। वे प्रजा हितैषी, शूरवीर, दयालु और राष्ट्रभक्त महाराजा थे।

सन्त-कवि गरीबदास

महन्त दयासागर जी के अनुसार ''सन्त-कवि श्री गरीबदास जी, जन्म जाट जाति, धनखड़ गौत्र के श्री बलराम जी निवासी, गांव छुड़ानी त० बहादुरगढ़ (तत्कालीन झज्जर तहसील) जिला रोहतक (हरियाणा) के घर वैशाख शुक्ल पूर्णिमा, (संवत् १७७४, सन् १७१७) मंगलवार को सूर्योदय से पूर्व, मीन लग्न, आश्लेषा नक्षत्र में हुआ।''

कहा जाता है कि लगभग २५० वर्ष पूर्व रोहतक के करोंधा गांव में एक जाट किसान अपनी ससुराल झज्जर तहसील के एक गांव छुड़ानी में घर जमाई के तौर पर आ बसा। यहीं पर एक बालक ने जन्म लिया, जिसका नाम 'गरीबू' रखा। यही गरीबू नाम का बालक बाद में 'गरीबदास' बना। गरीबदास के अनुयायी 'गरीबदासी कहलाते हैं। गद्दी के वंशजों को 'साध' के नाम से जाना जाता है। इस समय महन्त गरीब दास जी के नाम से स्थापित गद्दी पर पैतृक परम्परानुसार उनकी छठी या सातवीं पीढ़ी के महन्त गंगासागर के पुत्र दयासागर गद्दीनशीन हैं। यहां प्रतिवर्ष मेला लगता है।

संत गरीब दास जी किसान थे और जीवन पर्यन्त गृहस्थ में रहकर जनकल्याण किया। आपका विवाह बरोणा गांव (सोनीपत) के चौधरी न्यादर सिह की सुपुत्री मोहिनी देवी के साथ हुआ। सन्त जी के चार पुत्र– तुरती रास, जैतराम, अंगदराम और आसेराम थे। दिलकौर और ज्ञानकौर दो पुत्रियां थी। सन्त जी के द्वितीय पुत्र जैतराम अपने मूल गांव करौंधा में जाकर बस गए और वाणियों की रचना की। सन्त जी के पिता का नाम चौधरी वलीराम था।

महन्त गरीबदास जी की वाणी भक्तिकाल के कवियों जैसी थी। उन्होंने अपनी वाणियों में सादा जीवन और उच्च विचार पर बल दिया है। वे निर्भीक और स्पष्टवादी थे। श्री राजपालसिंह शास्त्री के अनुसार "बाल्यावस्था से ही उन्हें वैराग्य हो गया था। ईश्वरभक्ति, स्पष्टवादिता, निर्भीकता के लिए आप बहुत शीघ्र प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। इन्होंने हरियाणा में आध्यात्मिकता का और हिन्दुत्व के उच्च सिद्धान्तों का बड़ा प्रचार किया। ये योगी और सिद्ध महात्मा के रूप में विख्यात हुए।"

डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार सन्त जी की अनुभव वाणी की संख्या १७००० है, जो ग्रन्थ साहब के रूप में संकलित है। महन्त दयासागर जी ने लिखा है— "इनके अतिरिक्त लगभग १७० विविध विषयों पर सन्त गरीबदास जी ने अंग, ग्रन्थ, पद, राग, झूलने, खेते, कथा, रमैंणी, नसीहत नामा, त्रिभंगी छन्द, सवैये आदि के रूप में वाणी लिखी। गरीबदास जी की वाणी में हिन्दी, तुर्की, फारसी, अरबी संस्कृति, बृजभाषा, पंजाबी व हरियाणवी (बांगरू) भाषाओं का समावेश है। हरियाणवी भाषा के लेखकों के लिए सन्त गरीबदास पूर्ण गद्यकार थे।"

महन्त गरीबदास जी स्वयं जाट थे और उन्होंने जाट की परिभाषा करते हुए कहा है—

जाट सोई जो पांचों झटकैं,
खासी मनस्यों निशदिन अटकैं।"

अर्थात् जो पांचों इन्द्रियों का दमन करके बुरे संकल्पों से दूर रहकर भगवद् भक्ति करे, वही वास्तव में जाट है।

महन्त जी के 'ग्रन्थ साहब' के अध्ययन से सहज ही पता चलता है कि वे वास्तव में हरियाणा के कबीरदास थे। उन्होंने

ग्रामीणवासियों व एक जाटभक्त हरलाल को प्रभु-स्मरण की सरल विधि बताते हुए कहा है–

(१)

गरीब ग़ाड़ी बाहो घर रहो, खेती करो खुशहाल।
साईं सिर पर राखियो, सही भक्त हरलाल।।।

(२)

"दास गरीबा कहे दर्वेशा,
रोटी वांटों सदा हमेशा।"

महन्त दयासागर जी ने उनके दर्शन के विषय में कहा है– "सन्त गरीबदास जी की वाणी में तत्त्वदर्शन के साथ-साथ काव्यात्मकता का पूरा निर्वाह हुआ है, अभिव्यंजना भरपूर है। युग तथा परिवेश के प्रति सन्त गरीबदास संवदेनशाली थे। सन्त जी की वाणी से सिद्ध है कि वे शैव, शाक्त, वैष्णव व बौद्धिक मतों के पूर्ण जानकार थे। सन्त गरीबदास जी की वाणी का अध्ययन करके जीवन को आदर्श बनाया जा सकता है। सन्त गरीबदास जी ने अभक्ष्य-भक्षण और दुराचार का बहुत कट्टर विरोध किया।"

छुड़ानी धाम

यह गरीबदास के शिष्यों का परमपवित्र तीर्थ स्थल है। यहां प्रतिवर्ष मेला लगता है। महन्त जी के शिष्य इस धाम को 'छतरी साहब के नाम से पुकारते हैं। यह सफेद संगमरमर का बना हुआ है, जो कई एकड़ में फैला हुआ है। इसके प्रांगण में १३० फुट ऊंचा लोहे का निशान साहब पंचरंग झण्डा लगा हुआ है। गुम्बद के नीचे सन्त गरीबदास की समाधि बनी हुई, जिसे उनके बड़े पुत्र गद्दीनशीन महन्त तुरतीराम जी ने बनवाया था। अब भक्तों ने इसे काफी विस्तृत रूप दे दिया है।

मंदिर में महन्त गरीबदास की भव्य प्रतिमा विराजमान है। आधुनिक सुविधाओं से सम्पन्न मंदिर में लगभग १०० कमरे बने हुए हैं। मेले में हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और हिमाचल आदि से लोग गरीबदास जी को श्रद्धा सुमन चढ़ाते हैं। यह मेला फाल्गुन शुक्ला द्वादशी को लगता है। अब दूसरा मेला भी लगता, जो भादों माह की दूज को लगने लगा है। इस धाम में आचार्य गद्दी पर वंशानुगत बड़ा पुत्र श्री महन्त होता है।

महन्त गंगासाहब जी ने छत्तरीसाहब बाबा गरीबदास ट्रस्ट का गठन किया। ट्रस्ट की ओर से समाजसेवा का कार्य किया जाता है। गरीबदास अखांड़े में नवयुवक व्यायाम करते हैं। पहलवानों को ट्रस्ट की ओर से पुरस्कार भी दिए जाते है। वर्तमान गद्दीनशीन महन्त दयासागर ने "सन्त गरीबदास कल्याणकारी उपदेश" नाम मासिक पत्रिका का संपादन और प्रकाशन भी आरम्भ किया है। पत्रिका निःशुल्क है। गरीबदास ट्रस्ट की ओर से २८ फरवरी, १९८७ से १२ मार्च, १९८७ तक विशाल धार्मिक समारोह मनाया गया और समाज के पिछड़े वर्गों को लाखों रु० की आर्थिक सहायता दी गई। महन्त दयासागर जी के अनुसार, "छुड़ानी धाम के अतिरिक्त कई प्रान्तों में सन्त गरीबदास जी सम्बंधित कुटियाएं, आश्रम, धर्मशाला, गऊशाला, धार्मिक मन्दिर तथा अस्पताल व शिक्षण संस्थाएं सुस्थापित हैं और समाज-सुधार का कार्य कर रही हैं। सन्त गरीबदास की वाणी, उनका पंथ आज बहुत तेजी से फैलता जा रहा है।

युग पुरुष महाराजा सूरजमल
(देहान्त ५ दिसम्बर १७६३ ईस्वी)

युगपुरुष महाराजा सूरजमल

— कुंवर नटवर सिंह

सत्रहवीं शताब्दी के सातवें दशक में भरतपुर के दरबार में रहने वाले एक ईसाई पादरी फादर फ्रान्कोइस जेवियर वेन्डेल ने लिखा है जिस जाट जाति ने भारत में अनके वर्षों तक तहलका मचा दिया, विस्तृत प्रदेश जिसके कब्जे में है, जिसका भाग्य थोड़े ही दिन में बुलन्दी पर पहुंचा गया है जिसने बहुत बड़ी प्रतिष्ठा हासिल कर ली है— मुगल साम्राज्य की वर्तमान स्थिति को समझने के लिए उस (जाट) जाति को जानना आवश्यक है। यदि कोई व्यक्ति इस शताब्दी में होने वाले उन महापरिवर्तनों पर विचार करता है जिन्होंने साम्राज्य प्रचण्ड वेग से झकझोर कर रख दिया है तो वह इस निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि यदि जाटों को इन परिवर्तनों का एकमात्र कारण न भी माना जाए तो इतना हर हालत में मानना पड़ेगा कि वे ही इनके सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण थे।

औरंगजेब के सिंहासन पर बैठने के थोड़े दिन के भीतर ही जाटों ने अपनी दिलेरी दिखा दी थी। ''उनकी गतिविधियों का क्षेत्र वह आयताकार शाहीं प्रान्त थाँ, जो उत्तर से दक्षिण तक लगभग दो सौ मील लम्बा तथा सौ मील चौड़ा था, यमुना नदी जिसकी धुरी के समान केन्द्र में थी तथा दिल्ली और आगरा जिसके मुख्य नगर थे।''

इस क्षेत्र के मध्य में ब्रजप्रदेश स्थित था जिसमें मथुरा, गोवर्धन, वृन्दावन, गोकुल नंदगांव तथा बरसाना जैसे हिन्दुओं के धर्मस्थान थे। महाराजा सूरजमल तथा उनके पुरखों ने यह अनुभव कर लिया था कि औरंगजेब की इस्लामी धर्मान्धता का शिकार होने

से इन पवित्र स्थानों की रक्षा की जाये। महान अकबर ने तो 'अपनी प्रजा में धार्मिक मतभेदों से उत्पन्न समस्याओं से निपटते में' कूटनीतिज्ञता का परिचय दिया था परन्तु उसके प्रपौत्र ने उस भवन को ढाह दिया, जिसका निर्माण अकबर ने किया था। औरंगजेब द्वारा इस्लाम के नियमों को कठोरता और अकल्पनीय ढंग से लागू किया जाने से राजपूत विमुख हो गए, मराठों में उत्तेजना फैल गई, सिक्खों को ठेस पहुंची तथा ब्रजक्षेत्र के जाट उसके सबसे बुरे शत्रु बन गये। औरंगजेब की इस नीति की व्याख्या करना तो संभव है पर इसे क्षमा करना या अनदेखा कर देना संभव नहीं है।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद साम्राज्य का पतन और क्षय बहुत तेजी से होने लगा। दक्षिण की ओर जाने वाले मुगल काफिलों पर सबसे पहले तिलपत के जाट जमींदार गोकुल, उसके बाद भरतपुर के सिनसिनवार जाट ठाकुर राजा राम (मृत्यु सन् १६८८) तथा चूड़ामन (मृत्यु संन् १७२१) ने तबाही मचा दी। गोकुल १६६९ में पकड़ा गया तथा इसके बाद उसे आगरा लाया गया जहां इस्लाम धर्म न स्वीकार करने पर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए गये। औरंगजेब द्वारा मथुरा के केशवदेव मंदिर को नष्ट किये जाने का बदला राजाराम ने सन् १६८८ में आगरा के निकट सिकन्दरा में स्थित अकबर के मकबरे को लूट कर लिया। अकबर की हड्डियां निकाल कर आग के हवाले कर दी गई। दिल्ली दरबार ने ठाकुर चूड़ामन को (जिसे उस समय कम लोग जानते थे) मनसबदारी दे दी ताकि वह साम्राज्य के पक्ष में रहे। इसके साथ ही उससे शाही राजमार्ग की निगरानी का भार भी सौंप दिया गया किन्तु इतने पर भी जो कोई उसे दिल्ली-आगरा-ग्वालियार राजमार्ग पर मिला, उसे लूटे बिना नहीं छोड़ा गया। जैसा कि डा० कानूनगो ने लिखा है ''रेबड़ की चौकीदारी के लिए भेड़िया छोड़ दिया गया।''

किन्तु ब्रज के जाट सरदारों और मुरसान, हाथरस, सहारनपुर, बिजनौर तथा बल्लभगढ़ के जाट रईसों को वास्तविक रूप से और प्रभावकारी ढंग से इकट्ठे करने का काम राजा बदनसिंह और उसके पुत्र सूरजमल के लिए रह गया था। सूरजमल के जन्म के समय जाट बुरी तरह बिखरे हुए थे और उनकी सरकार (यदि उसे सरकार कहा जाए) "रईसों का गणतंत्र थी। ये रईस संख्या में इतने अधिक थे कि उनका समूह गणतंत्र की बजाए गुटतंत्र लगता था।" साहसिकता और सौभाग्य ने सूरजमल तथा उसके पिताजी की सहायता की, जिससे वे मथुरा और भरतपुर के आस-पास अपने लिए एक राज्य की स्थापना कर सके। मुगल काफिलों को लूटा गया। धन संग्रह किया, किले बनाए गए तथा जाति को संगठित किया। बदनसिंह के २६ पुत्र थे जिनमें सुजानसिंह (जो सूरजमल के नाम से अधिक प्रसिद्ध है) उनका सबसे बड़ा और चहेता पुत्र था। हालांकि बदनसिंह की मृत्यु १७५६ ई० में हुई किन्तु इससे २५ साल पहले ही उन्होंने सूरजमल का राज्य सौंप दिया था।

सूरजमल की उपलब्धि अत्यन्त असाधारण है। वह १७४० से अपनी मृत्यु (१७६३) तक उत्तर भारत की एक दुर्जेय हस्ती के रूप में हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। उसकी वीरता, गम्भीर निर्णय, शक्ति तथा दूरदर्शिता ने स्वतः ही उसके समसामयिकों को बहुत अधिक प्रभावित किया है।

'इमाद-उस-सादात' के लेखक ने सूरजमल के विषय में लिखा है– "राजस्व और सिविल मामलों के संचालन और प्रबन्ध में उसकी निपुणता, योग्यता तथा बुद्धिमानी की समता सिवाए निजाम आसफजाह बहादुर के कोई भी भारतीय प्रतापी व्यक्ति नहीं कर सकता।

वह अपनी जाति के उदात्तगुणों –साहस, शक्ति, समझदारी

दृढ़ अध्यवसाय को उत्कृष्ट रूप से धारण करने के साथ ऐसी अदम्य चेतना का भी धनी था जो कभी पराजय स्वीकार नहीं करती। किन्तु किसी उत्तेजक अवसर के समय चाहे वह युद्ध का हो या कूटनीतिज्ञता का, वह अपने अधिकांश समसामयिकों की तुलना में अधिक कोमल अन्तःकरण का व्यक्ति नहीं था। कुचक्रों षडयंत्रों और अनैतिक कूटनीति के उस युग में उसने कपटी मुगलों और चालाक मराठों को समानरूप से निष्फल कर दिया था। साररूप में यह कहा जा सकता है "वह उस अनुभवी बूढ़े पक्षी की तरह था जो अपने आपको फंसाए बिना हर जाल में से दाना चुग सकता था।"

एक सुसंगठित सेना तथा अपनी चतुराई की सहायता से सूरजमल ने अपने राज्य का विस्तार कर लिया। सन् १७६३ में उसकी मृत्यु के समय उसके राज्य में भरतपुर, अलवर, धौलपुर, आगरा, बुलन्द शहर, सहारनपुर, मथुरा, होडल, पलवल, गुड़गांव बल्लभगढ़, रिवाड़ी, अलीगढ़, हाथरस, मैनपुरी तथा दिल्ली के आस-पास के क्षेत्र शामिल थे। उसके न्यायपरायण और बुद्धिमतापूर्ण शासन की प्रसिद्धि ने सभी वर्गों, व्यवसायों तथा जातियों के लोगों को उसके राज्य की ओर आकृष्ट कर लिया था, जो अव्यवस्था फैले **'हिन्दुस्तान'** के मैदानों में अकेला ही ऐसा स्थान था जहां शांति तथा सुरक्षा की भावना वास करती थी।

महाराजा सूरजमल एक कूटनीतिज्ञ के रूप में मुठभेड़ के स्थान पर समझौते या मेल-मिलाप को अधिक लाभप्रद स्वीकार करने वाला व्यक्ति था। यदि सदाशिवराव भाऊ ने उसकी सलाह की ओर ध्यान दिया होता तो मराठा सेनाएं उस नियति को टाल सकती थी, जो १७६१ में पानीपत के मैदान में मराठा सेनाओं के साथ घटित हुई। डा० कालिकारंजन कानूनगो ने अपनी जाट इतिहास की पुस्तक में लिखा है.... "महान जाट सरकार द्वारा उस
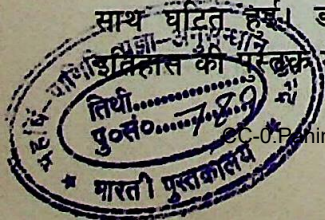
युग में अनेक अवसरों पर प्रकट किये गए राजनैतिक विचार बहुत प्रशंसनीय हैं। और यदि मराठा सरकार इन विचारों के अनुसार कार्य करती तो '**हिन्दुस्तान**' में उनका प्रभुत्व बहुत लम्बे समय तक अविचलित रूप में कायम रहता।" सूरजमल उत्तर भारत में मराठों की उपस्थिति को सभी विदेशी आक्रमणकारियों को बाहर रखने तथा हिन्द और मुस्लिम शक्तियों के बीच में संतुलन कायम करने के लिए एक राजनैतिक अनिवार्यता के रूप में स्वीकार करता था।

अब्दाली के सन्निकट आक्रमण से देश की रक्षा करने के लिए पानीपत की तीसरी लड़ाई की पूर्व संध्या को रणनीति तय करने के लिए आगरा में एक भाग्य निर्णायक मीटिंग हुई। उत्तर भारत में सूरजमल के पास सर्वश्रेष्ठ प्रशिक्षित सेना थी। यद्यपि सेना के वेतन का भुगतान कभी-कभी समय पर नहीं हो पाता था फिर भी सूरजमल की सैनिक टुकड़ियां अनुशासित थी तथा उनमें सभी जातियों तथा सम्प्रदायों के लोग थे। सूरजमल ने सैनिक विषयों पर बड़े अधिकार पूर्वक अपनी बात कही। उसने सदाशिव भाऊ से कहा "आपकी महिलाएं, अनावश्यक साज-सामान और भारी तोपें जिनकी लड़ाई में कोई बहुत उपयोगिता नहीं है, चम्बल के पार भेज दी जाएं तथा आप स्वयं हल्के हथियारों तथा रणकुशल सैनिक टुकड़ियों के साथ अहमदशाह सेना लेकर अब्दाली के साथ अनियमित युद्ध जंग-ए-कजा-कन-आरम्भ किया जाए। राजाओं और शहंशाहों की शैली की जमी हुई लड़ाई न की जाए। हमें जंग-ए-सुल्तानी से बचना चाहिए।" भाऊ ने उसकी सलाह अनसुनी कर दी। सूरजमल जो भाऊ द्वारा दीवान-ए-आम की चांदी की छत को जलाने और पिघलाने के कारण पहले से ही रुष्ट और क्रुद्ध था, दिल्ली से चल पड़ा और भरतपुर लौट आया।

कला और संस्कृति के प्रति जाटों की रुचि न होने की बात कह

कर उसका मजाक उड़ाना एक फैशन हो गया है। आगरा और दिल्ली में टूरिस्ट गाइड बड़ी खुशी और शान के साथ 'जाट' गर्दी' (जाट लूट) का विवरण तो देते हैं किन्तु इस बात की चर्चा कभी नहीं करते कि भाऊ द्वारा दीवान-ए-आम की चांदी की छत को पिघलाने का कड़ा विरोध महाराजा सूरजमल ने किया था। डीग के उद्यान-महल उसकी सौन्दर्य चेतना और शिल्पा-दृष्टि के भव्य उदाहरण हैं। ई० वी० हवेल ने अपनी पुस्तक 'इंडियन आर्कीटैक्चर' में लिखा है— "इन महलों में शाहजहाँ के महलों के लालित्य तथा राजपूती शिल्पकला की मजबूती दोनों को समावेश है। इसके साथ-साथ ये महल राजपूताना के पुराने दुर्गों तथा महलों की अपेक्षा आधुनिक जीवन की सुविधाओं के अधिक अनुकूल हैं।

पानीपत में मराठों की हार से सूरजमल को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उसने मराठों की पराजय तथा बदनामी के इस मौके पर खुशियां नहीं मनाई बल्कि लगभग एक लाख मराठा-स्त्री पुरुषों तथा बच्चों को डीग तथा भरतपुर में लगभग एक महीने तक शरण दी।

१७६१ में सूरजमल शक्ति तथा प्रसिद्धि के सर्वोच्च शिखर पर था, भारत में वही एकमात्र अधिपति था, जिनकी सेना अक्षुण्ण थी तथा जिसका खजाना उमड़ रहा था। उसी वर्ष उसने आगरे पर तथा कुछ समय बाद हरियाणा के बहुत बड़े भाग पर कब्जा कर लिया जैसे उसने अपने बेकाबू तथा तुनक-मिजाज बेटे जवाहरसिंह को शासन करने के लिए दे दिया।

सूरजमल ने होडल के सरदार की बेटी रानी किशोरी से शादी की, जो अठारहवीं सदी के इतिहास का एक बहुत उपेक्षित नाम है तथा जिसने अपने पति की मृत्य के बाद भरतपुर के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। सूरजमल का वित्तीय

सलाहकार रूपराम कटारिया था। उसके अत्यन्त गुप्त मंत्रणा देने वालों में कुछ मुसलमान भी थे, जिनके उपयोग सूरजमल ने सद्प्रभाव डालने के लिए किया।

अहमदशाह अब्दाली को पत्र

जब अहमदशाह अब्दाली ने डीग और कुंभेर के किलों को नष्ट करने की धमकी दी तो सूरजमल ने अफगान को पत्र लिखा। स्वयं अनपढ़ होने के बावजूद उसमें प्रसिद्ध मुंशियों को नौकर रखने की समझदारी थी। पत्र इस योग्य है कि उसे अधिक अच्छी तरह जाना जाये।

जाट राजा ने लिखा:—

—'हिन्दुस्तान' के साम्राज्य में मेरी कोई महत्वपूर्ण स्थिति तथा शक्ति नहीं है। मैं तो मरुस्थल में रहने वाला एक जमींदार हूं, और मेरी महत्वहीनता के कारण इस युग के किसी भी बादशाह ने मेरे कार्यों में दखल देना अपने लिए योग्य नहीं समझा। आप जैसे महान् सम्राट् युद्ध के मैदान में आमने-सामने भिड़ने और मेरा विरोध करने का निश्चय किया है और मुझ जैसे नगण्य आदमी के विरुद्ध अपनी सेना को तैयार करने की बात सोची है। यह काम अकेला ही आप जैसे बादशाह की महानता को बट्टा लगाने (और लोगों की नजर में) मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए काफी होगी। मुझ जैसे दीन-हीन के लिए तो यह बड़े गौरव की ही बात होगी। संसार यह कहेगा कि ईरान और तूरान के बादशाह ने अत्यन्त भयभीत होकर एक कंगाल व खानाबदोश पर अपनी सेनाओं का कूच कर दिया! ताज-बख्शने वाले आप जैसे शहंशाह के लिए ये सब बड़े ही शर्मिन्दगी भरे होंगे। इतना ही नहीं (हार-जीत का) अन्तिम परिणाम भी संदेह से बिल्कुल परे नहीं है। यदि इतनी सैनिक शक्ति और साज-सामान की बदौलत आप मेरे जैसे कमजोर प्राणी को नष्ट

करने में सफल हो भी गए तो आपको क्या श्रेय मिलेगा। (मेरे बारे में) लोग यही कहेंगे कि उस बेचारे के पास भला कौन-सी बड़ी शक्ति और पद था। किन्तु यदि दैवी आदेश से (जिसका किसी को कुछ पता नहीं होता) बात कुछ उल्टी पड़ गई तो आपको कहां से कहां ले जाकर छोड़ेगी? ग्यारह वर्ष के समय में आपके बहादुर सैनिकों द्वारा हासिल की गई यह शक्ति और प्रधानता पलभर में नष्ट हो जाएगी।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि आप जैसे विशाल हृदय बादशाह ने इतनी छोटी-सी बात की ओर ध्यान नहीं दिया है और इतने अधिक सैनिक जमाव के साथ इस साधारण और तुच्छ अभियान के लिए स्वयं कष्ट उठाया। यहां तक मेरे तथा मेरे देशवासियों के हत्याकाण्ड एवं उजाड़ने के लिए जारी किए गए धमकी भरे और हिंसक आदेश का प्रश्न है, ऐसे कारणों से रणबांकुरों को कोई भय नहीं होता।

''जहां तक मेरा संबंध है मैंने पचास वर्ष पार कर लिये हैं और आगे का भला किसे क्या पता होता है। मेरे लिए इससे बड़ा वरदान क्या होगा कि कुर्बानी का जाम पी जाऊं, जो शूरवीरों को युद्धभूमि में कभी न कभी पीना ही होता है। इसप्रकार इतिहास के पन्नों पर मैं अपना तथा अपने पूर्वजों का नाम अमिट कर जाऊंगा और लोग याद करेंगे कि एक निर्बल किसान एक ऐसे शक्तिशाली शहंशाह की बराबरी करते हुए मैदान में शहीद हो गया जिसने बड़े-बड़े बलवान राजाओं का दमन किया था। ऐसी ही सुदृढ़ता मेरे साथियों तथा अनुयायियों के हृदय में है। मैं यदि आपके दिव्य दरबार की दहलीज पर हाजिर होने का विचार बनाना भी चाहूं, तो मेरे सहयोगियों का गौरव ऐसा करने की इजाजत नहीं देता। ऐसी परिस्थितियों में, न्याय के स्रोत हे शहंशाह आप तिनके के समान

कमजोर मुद्दों पर ध्यान न देकर अपना ध्यान अधिक महत्वपूर्ण अभियानों की ओर केंन्द्रत करें तो आपकी शान और मर्यादा को कोई नुकसान नहीं पहुंचेगा।

"जहां तक आपके क्रोध के पात्र मेरे तीन किलों का संबंध है, जिनको आपके सेनापतियों ने 'मकड़ी के जाले' के समान माना है, इसका फैसला तो असली लड़ाई के बाद ही होगा कि वे कैसे हैं। यदि भगवान ने चाहा तो वे 'सिकन्दर के परकोटे' जैसे साबित होंगे।"

अहमदशाह अब्दाली ने भरतपुर पर हमले का खतरा मोल नहीं लिया। अनेक अन्य कारणों से भी अफगानिस्तान वापिस लौटने में ही उसे अपनी समझदारी दिखाई दी।

दिल्ली के निकट शाहदरा में २५ दिसम्बर १७६३ को हुई महाराज सूरजमल की मृत्यु भी रहस्य के पर्दे से ढकी हुई है। इस विषय में अनेक विवरण प्राप्त हैं किन्तु उनमें से कोई भी पूरी तरह विश्वासोत्पादक नहीं हैं। उनका मृत शरीर कभी प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए रानी किशोरी द्वारा रखे गये उनके दो दांतों का पूरे सम्मान के साथ गोवर्धन में दाह-संस्कार किया गया। गोवर्धन जो भरतपुर के राजाओं की अन्तिम विश्रामस्थली है।

सूरजमल ने अपने पीछे एक ऐसा विस्तृत राज्य छोड़ा था, जहां शांति और समृद्धि का शासन था। उसने प्रचण्ड बेटे जवाहरसिंह के लिए बीस हजार घुड़सवार सेना, पच्चीस हजार पैदल सेना, तीन सौ तोपें, साठ हाथी तथा छः करोड़ रुपये नकद छोड़े। उससे भी अधिक उसने अपना महान् नाम छोड़ा, जो आज दो सदियों के बाद भी हमें इस प्रकार प्रेरणा दे रहा है जिस प्रकार छात्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप तथा महाराजा रणजीत सिंह के नाम प्रेरणा दे रहे हैं।

ता जिनके कारण वे शहीद हुए। उन्हें ज्ञात था कि मौत की आजन्म कारावास की तलवार उनके सिर पर लटकी हुई है,
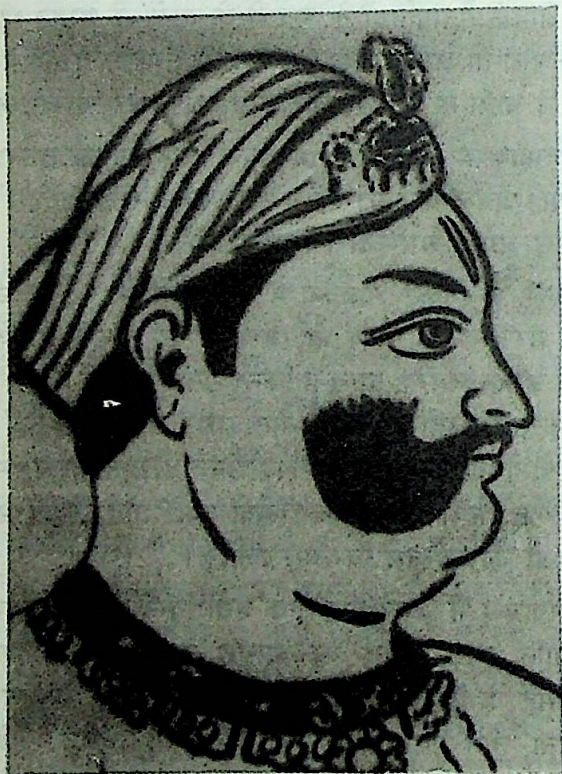
वीर जवाहर सिंह

(देहान्त ८ अगस्त, १७६८ ईस्वी)

वीर जवाहरसिंह

देदीप्यमान सितारे वीर जवाहर सिंह की वीरता और शासन के विषय में डा० मनोहरसिंह राणावत ने कहा है।– "जवाहरसिंह अपने पिता (महाराजा सूरजमल) की ही भांति एक वीर और निर्भीक सैनिक, दुःसाहसी सेनापति और कठोर शासक था। उसे न मृत्यु से डर और न ईश्वर का भय था। युद्धप्रिय जवाहर कठिन से कठिन परिस्थितियों में और दुरुह उलझनों से भी नहीं घबराता था। उसने अपने जीवनकाल का अधिकांश समय युद्धों में ही बिताया और प्रत्येक युद्ध में उल्लेखनीय वीरता का परिचय दिया। इन सारे युद्धों में उसने अपनी सेना का परिचय दिया। इन सारे युद्धों में उसने अपनी सेना का नेतृत्व किया। उसके शासनकाल में उसकी सेना में कोई विद्रोह या उपद्रव नहीं हुआ।"

जवाहरसिंह ने सैनिकशक्ति के महत्त्व को समझा था, इसलिए अपनी सेना को यूरोपीय ढ़ंग से संगठित और सुशिक्षित किया। उसे भली-भांति ज्ञात था कि सैनिकशक्ति के द्वारा ही राजा में शान्ति और सुव्यवस्था रह सकती है। यूरोप के सैनिकों को भी उसने अपनी सेना में उचित स्थान दिया। वह सैनिकों को समय पर वेतन देता और वेतनवृद्धि भी करता था। उत्साहवर्द्धन के लिए समय-समय पर पुरस्कार भी दिया करता था। उसकी सेना में पूर्णरूप से अनुशासन था।

जवाहरसिंह ने निरन्तर युद्धरत रहते हुए भी अपने राज्य के शासन-प्रबन्ध में ढ़िलाई नहीं आने दी। अपने शत्रुओं के साथ निरन्तर युद्ध करता रहा। उसने राज्य के सभी विरोधी तत्त्वों को

कुचल दिया था और अपने पीछे एक सुव्यवस्थित राज्य छोड़ा था। कानूनगो के अनुसार- "जहां उसके मित्रगण उसे एक योग्य राजा, साहसी, तड़क-भड़क का प्रेमी और उदार व्यक्ति के रूप में देखते थे, वहीं दूसरी ओर उसके शत्रु उसे जिद्दी, खूंखार, तानाशाह, भूखा भेड़िया तथा अविश्वसनीय छल-कपटी व्यक्ति कहते थे।

जवाहरसिंह ने अपने राज्यारोहण के समय प्राप्त जाट राज्य में आगरा से चम्बल नदी के दोनों तटों पर फैला हुआ भदावर क्षेत्र, चम्बल के दक्षिणी तट पर सिकरवार, कछवाधार और तंवरधार क्षेत्र, डंडोली खिलोती के साथ ही उत्तरी कालबा का भाग, कालपी इत्यादि क्षेत्र भी सम्मिलित कर लिए थे। आय-व्यय का पूर्ण व्यौरा रखा जाता था। जो पूरा व्यौरा नहीं देता था, उसे दण्डित किया जाता था। इस प्रकार जवाहरसिंह ने वित्तीय-व्यवस्था में भी सुधार किये। यही कारण है कि जवाहरसिंह के बाद उसके विलासी और अयोग्य उत्तराधिकारी रतनसिंह की भी आज्ञा का पालन उसकी सेना ईमानदारी और निष्ठा के साथ करती रही। निरन्तर युद्धरत रहते हुए भी, उसने अपने राज्य के शासन-प्रबन्ध की तरफ़ बराबर ध्यान दिया।

जवाहरसिंह कला-प्रेमी भी था। अपने पिता महाराजा सूरजमल के देहावसान के बाद गोवर्धन में उनकी स्मृति में कुसुम सरोवर के तट पर राधा कुण्ड के समीप एक अत्यधिक सुन्दर छत्री का निर्माण भी करवाया। यह छत्री जाट शैली का अनुपम नमूना है। अपने प्रकृति-प्रेम के कारण ही उसने कई उद्यान बनवाए।

वीर जवाहरसिंह की मृत्यु के विषय में इतिहासकारों में मतभेद हैं। आंग्ल आलोचक ने जवाहर की मृत्यु के विषय में लिखा है।— "नगर के बाहर जवाहरसिंह ने एक सुन्दर बाग लगवाया था। उसीमें एकदिन वह हाथियों की लड़ाई देखने गया। उस समय

एक ऐसे व्यक्ति ने तलवार का वार किया, जिसे अभी तक कोई व्यक्ति पहचानने में समर्थ नहीं हुआ। है। उस आदमी ने तलवार के एक ही वार से राजा का सिर काट डाला। राजा के सब आदमी तत्क्षण ही हत्यारे पर टूट पड़े और उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, जिससे उसको पहचानना भी संभव नहीं रहा।"

डा०·मनोहरसिंह राणावत लिखते हैं– "'अगस्त १७६८ ई० के प्रथम सप्ताह के अन्त में लगभग (७ या ८ अगस्त, १७६८) जवाहर सिंह की हत्या की गई और उसके साथ ही उस नवोदित जाट राज्य का शौर्य, साहस और सौभाग्य का भी अन्त हो गया। पूर्ण प्रखरता से तप रहा जाट-राज का सौभाग्य सूर्य अब तेजी से अस्ताचल की ओर अग्रसर हुआ और जाट-जीवन संध्या दुर्भाग्य और विरोधी रूपी बादलों से घिरता रहा।"

जवाहरसिंह का नजीबुद्दौला के साथ संघर्ष

भरतपुर का प्रतापी जाट राजा सूरजमल नजीबुद्दौला के साथ युद्ध करता हुआ दिसम्बर २५, १७६३ ई० को अचानक मारा गया। तब उसका बड़ा पुत्र जवाहरसिंह ही उत्तराधिकारी बना। स्वभाव से क्रोधी जवाहर अपने पिता के घातक से बदला लेने की क्रोधाग्नि में जल रहा था। लेकिन वह अविलम्ब नजीबुद्दौला पर हमला करने के लिए प्रयत्न नहीं कर सकता था, क्योंकि यद्यपि वह राजा तो घोषित किया जा चुका था तथापि परिस्थितियां उसके प्रतिकूल ही थीं। नजीबुद्दौला से बदला लेने के लिए उसने अपने राज्य के सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियों के समक्ष युद्ध का प्रस्ताव रखा, परन्तु किसी ने भी उसका अनुमोदन नहीं किया।

उधर नाहरसिंह जवाहर को गद्दी से उतारने के लिए धौलपुर में मराठों से सांठ-गांठ कर रहा था। बलराज ने जो कि भरतपुर

किले का शासन-अधिकारी था, भरतपुर दुर्ग के द्वार बन्द कर दिये। जवाहर का किले में प्रवेश करना कठिन हो गया। साथ ही सूरजमल का गुप्त खजाना जवाहरसिंह को बताने से भी उसने इन्कार कर दिया। नाहरसिंह के समर्थक कई सरदार डीग और भरतपुर छोड़ कर सुदूर क्षेत्रों में अपनी-अपनी जागीरों को चले गये। वैर के राजा बहादुरसिंह ने जवाहर को राजा मानने से इन्कार कर दिया और वह स्वयं स्वतंत्र शासक बनने का प्रयास करने लगा। राज्य के अनेक उच्चाधिकारियों ने नवयुवक राजा जवाहरसिंह को राजकीय आय-व्यय के हिसाब देने और शेष द्रव्य लौटाने से मना कर दिया। जवाहरसिंह ने हाल ही में सत्ता प्राप्त की थी, इसलिए वह उन्हें बाध्य भी नहीं कर सकता था। लेकिन जवाहर को नजीबुद्दौला से युद्ध करने के लिए धन और सैनिकशक्ति दोनों की आवश्यकता थी। अतःउसने अपनी माता किशोरी से आर्थिक सहायता के लिए निवेदन किया, तब उसे राजमाता किशोरी से पर्याप्त धन प्राप्त हो गया। अब उसने अपने सलाहकारों पर व्यंग्य किया कि यदि वे नजीबुद्दौला के विरुद्ध युद्ध में उसकी सहायता नहीं करेंगे तो धन के बल पर वह विदेशी सैनिकों की सहायता प्राप्त करके नजीब पर हमला करेगा। अतः अनिच्छुक होते हुए भी उन व्यक्तियों को जवाहर का साथ देने के लिए सहमत होना पड़ा।

माता किशोरी से पर्याप्त धन-सम्पत्ति प्राप्त करके जवाहर ने नजीब के विरुद्ध लम्बे समय और बड़े पैमाने पर युद्ध करने के लिए तैयारियां प्रारम्भ कर दीं। सर्वप्रथम उसने अपनी सेना को उसका पिछले दो वर्षों का चढ़ा हुआ सारा वेतन देकर उसे सन्तुष्ट किया। फर्रुखनगर में जो सेना उसके आधीन थी और जिसने बिलोचियों को परास्त करने में विशेष वीरता का परिचय दिया था, उसे इनाम इकरार देकर और उत्साहित किया। तत्पश्चात् जवाहर ने अपने

अनुभवी राजदूत रूपाराम कोठारी को मल्हारराव होल्कर के पास भेजकर नजीव के विरुद्ध संघर्ष में सहायतार्थ उसे आमन्त्रित किया। पेशवा को भी सहायता के लिए लिखा। तब पेशवा ने भी मल्हारराव को संदेश भेजा कि इस युद्ध में वह जवाहर की सहायता करे। जवाहर की ओर से २५ लाख रुपये दिये जाने का वादा करने पर अपनी २० हजार मराठा सेना को लेकर मल्हारराव होल्कर स्वयं नजीव के विरुद्ध सहायता करने के लिए तत्पर हो गया। परन्तु मल्हारराव होल्कर का प्रमुख उद्देश्य दोनों ओर से धन प्राप्त करना ही था। आवश्यक धन देकर जवाहर ने १५ हजार सिक्ख सेना को भी सहायतार्थ आमन्त्रित किया।

यों ये तैयारियां एक लम्बे समय तक चलती रहीं, जिससे नजीब को भी उनका पूरा पता लग गया और वह बहुत भयभीत हो गया। वह इस बात को जान गया कि क्रोधाविष्ट जाट जाति उनसे बदला लेने के लिए खून की नदियां बहा देंगी। सहायता प्राप्त हेतु उसने अपने एक दूत मेघराज को अब्दाली के पास कंधार भेजा और प्रार्थना की कि वह इस जाट तूफान से उसकी रक्षा करें। मल्हरराव को जाटों से न मिलने देने के लिए भी नजीब ने प्रयत्न किया। उसने मल्हारराव होल्कर को लिखा कि, "हम दोनों में पुरानी मैत्री है। मैंने आपको पानीपत के युद्ध में सहायता दी थी।" साथ ही उसने जवाहरसिह का क्रोधाग्नि को भी अनेक प्रकार से शांत करने का प्रयत्न किया। उसने लिखा कि "जो कुछ होना था सो हो गया। अब यदि युद्ध करने से ही आपके पिता (सूरजमल) पुनः जीवित हों सकते हों तो आप अवश्य ही मुझे से युद्ध करें। मैंने आपके राज्य के किसी भी भाग पर अधिकार नहीं किया, फिर आप व्यर्थ में ही क्यों मुझे से लड़ाई मोल लेते हैं। विजय या पराजय तो भगवान के हाथ में है।" लेकिन अपने प्रतापी पिता के घातक को दण्ड देना, जवाहर व

समस्त जाट जाति के लिए आत्म-सम्मान एवं प्रतिष्ठा का प्रश्न बन चुका था। अतः नजीब के ये सारे प्रयत्न निष्फल हो रहे।

हिंडन नदी के किनारे सूरजमल के साथ हुए नजीब युद्ध में नजीब को विजय मिली थी, जिसके उल्लास में उसने मध्य दोआब के चार थानों पर अधिकार कर लिया था। जाटों के तहसीलदार बिना सामना किये ही पीछे हट गये थे। जवाहर ने अप्रैल, १७६४ ई० में पुनः उन थानों पर अधिकार स्थापित कर लिया था। बल्लभगढ़ के किले में बहुत सी तोपों और गोला बारूद एकत्रित कर लिया। बस, इस किले को अपना मुख्य सैनिक अड्डा बना कर दिल्ली पर हमला करना चाहता था। अपने तोपखाने के मुख्य अधिकारी विश्वसुख को उनसे यहां तैनात किया।

अक्तूबर, १८६४ ई० के अन्त में ६० हजार सेना व १०० बन्दूकें अपने साथ लेकर जवाहरसिंह ने नजीबुद्दौला के विरुद्ध युद्धाभियान प्रारम्भ किया। मल्हारराय और उसके साथ २० हजार मराठा सैनिक तथा १५ हजार सिक्ख सेना भी युद्ध के समय उसके साथ आ मिलने वाले थे। जवाहरसिंह पलवल पहुंच गया और दूसरे दिन फरीदाबाद पहुंचने वाला है, यह समाचार सुनकर नजीबुद्दौला सचेत और भयभीत हो गया। उसने अपने जमींदार अब्दुल्ला खां बंगश को जवाहरसिंह की गतिविधि का पता लगाने भेजा। जवाहरसिंह के पड़ाव के आस-पास तक पहुंच कर उसने नजीब को सूचित किया कि जवाहरसिंह शीघ्र ही एक विशाल सेना के साथ दिल्ली को घेरने वाला है।

नजीबुद्दौला को अब यह बात स्पष्ट हो गई कि जाट शक्ति रूपी तूफान से बचना कठिन है। उसने अपने स्त्री-बच्चों व धन-सम्पत्ति किले से बाहर निकालकर जिला सहारनपुर के अन्तर्गत सक्करताल भेज दिया। उसमें गंगा के पार के कुछ प्रमुख

अफगान भाइयों से भी सहायता मांगी। दिल्ली के चारों ओर खाइयां खुदवा कर मोर्चे भी लगा लिये।

दिल्ली के सामने पहुंच कर भी अपनी सेना को अपनी सहायक मराठा सेना की प्रतीक्षा में जवाहरसिंह ने रोके रखा। जब उसका मराठा साथी मलहारराव होल्कर आ पहुंचा, तब पुराने किले के पूर्व की ओर जमना के तट पर उसने अपना डेरा लगाया। नजीबुद्दौला बुलन्द बाग में शाही किले के नीचे ठहरा रहा और जमुना पर उसने पुल बनवाया ताकि दोआब के इलाके से खाद्य-सामग्री आ सके। उसने स्वयं भूतपूर्व वजीर कमरुद्दीन खां की हवेली में डेरा डाला। उसके सैनिक नदी के पास रहने लगे। उन्होंने एक खाई खोद कर उसके पीछे मिट्टी की दीवार बनाई और उस पर तोपें जमा दीं। इसप्रकार नगर के दक्षिण पूर्वी बुर्ज और नदी को मिला दिया गया।

उत्साही जवाहर ने नजीबुद्दौला को चुनौती दी कि इस प्रकार किले में छिपे रहने से भी उसके प्राण नहीं बच सकेंगे। बहादुरों की तरह बाहर आकर शक्ति परीक्षा के लिए आग्रह किया तथा अपनी सेना सहित दिल्ली से १० या १२ मील फरीदाबाद की तरफ पीछे हट कर उसने अफगान सेना को मैदान में आने का अवसर दिया। नजीबुद्दौला इस व्यंगात्मक उक्ति से अत्यधिक क्रोधित हो सैन्य दिल्ली के किले से बाहर निकला। नवम्बर, १५, १७६४ ई० को जवाहर व नजीब में युद्ध प्रारम्भ हुआ। दोनों-पक्षों में जम कर घमासान लड़ाई हुई। अन्त में जाट शक्ति के सामने नजीबुद्दौला की सेना के पैर उखड़ गये और पराजित रुहेला सरदार अपनी सेना के साथ वापस किले में जा पहुंचा। इस युद्ध में दोनों पक्षों के एक-एक हजार सैनिक मारे गए।

रुहेलों की इस पराजय से उत्साहित हो जवाहरसिंह ने शाहदरा को लूटा, फिरोजशाह के किले तक आगे बढ़ा और रुहेलों

की खाइयों के सामने आ डटा। तब अपने मराठा साथी मल्हारराव होल्कर से आग्रह किया कि वह उन पर आक्रमण करने में सहायता दे। मल्हारराव अपनी सेना के साथ निकला, परन्तु जवाहरसिंह की सेना से बहुत पीछे शेरशाह के किले के पास ही ठहरा रहा, क्योंकि वह नजीब से भी धन प्राप्त कर, उसकी रक्षा का वचन दे चुका था। वह नहीं चाहता था कि नजीब पराजित हो जावे तथा दिल्ली पर जवाहर का अधिकार हो जाये। उस की नीति यही थी कि जाटों से अधिकाधिक धन प्राप्त करने के साथ ही उनकी शक्ति भी कम करें। जवाहरसिंह ने उसे बार-बार आगे बढ़ कर हमला करने की प्रार्थना की, परन्तु उसने सुनी अनसुनी कर दी और वह यह कहता रहा कि जब तक पुराने किले में से सब रुहेलों को न निकाल दिया जाये तब तक आगे बढ़ना उचित नहीं है। उन दिनों दोनों ओर से केवल गोलियां चलती रहीं और यदा-कदा कुछ झड़पें भी हुईं, परन्तु जम कर युद्ध नहीं हुआ।

जवाहरसिंह को जब यह पता चला कि दिल्ली के दक्षिण में नजीब ने खाइयां खुदवा रखी हैं, जिसके कारण नगर के निकट नहीं पहुंचा जा सकता, उसने अपनी युद्ध योजना बदल दी। अब उसे अपने मराठा मित्रों पर विश्वास नहीं रह गया था। नवम्बर १६, १७६४ ई० को प्रातःकाल उसने बलराम व अपने गुरु रामकृष्ण महन्त तथा जोधपुर के ब्राह्मण सवाईराम को उसके साथ के सौ-पचास राठौड़ सैनिक सहित और अपने आठ हजार घुड़सवारों को अमली घाटी के पास जमुना पार करने के लिए भेजा। उन्हें यह आदेश दिया गया कि पश्चिमी तट पर रुहेलों के जो भी सवार गश्त लगा रहे हैं, उन्हें खदेड़ कर भगा दिया जाये। पुनः नजीबुद्दौला के नावों के पुल के पूर्वी तट पर जो एक सौ रुहेले बन्दूकची पहरा दे रहे हैं, उन्हें पराजित कर पुल पर धावा किया जाये। जिससे नजीब की

खाइयों में पीछे की ओर से प्रवेश किया जा सके। साथ ही सामने से भी इन खाइयों पर हमला किया जाये, जिससे नजीब की प्रधान सेना उसमें व्यस्त रहे। यदि इस योजना के अनुसार एकदम धावा कर दिया जाता तो वह सफल हो सकता था, परन्तु जाट सवार रास्ते में ठहर कर पटपरगंज की अनाज की संपन्न मण्डी को लूटने में लग गए। इसप्रकार उन्होंने बहुमूल्य समय नष्ट कर दिया।

उनकी कूच से धूल के जो बादल उड़ रहे थे, उनसे उनकी सारी गतिविधि का भी पता लग गया। तब शाहदरा से नजीब के पांच सौ तुर्की सवारों तथा नासिर खां दुर्रानी के नेतृत्व में छः सौ अफगान सवारों ने मिलकर उन पर आक्रमण किया और उन्होंने जी-जान से भयंकर युद्ध किया। वे जाटों को आगे नहीं बढ़ने देना चाहते थे, लेकिन जाटों की संख्या अधिक थी, अतः जाटों के आगे वे टिक नहीं सके। नजीब किले की बुर्ज पर बैठा दूरबीन द्वारा इस सारी स्थिति को देख रहा था। उसने खाइयों के अधिकारियों को सचेत किया और चुने हुए एक हजार रुहेले सैनिकों को नावों द्वारा पूर्वी तट पर भेजा कि वे जाटों को आगे न बढ़ने दें।

वे रुहेले सैनिक पूर्वी किनारे पर पहुंच गये और नदी के उस किनारे पर के खड्डों में छिप गये। जाट सेना इधर-उधर ध्यान दिये बिना निडर होकर आगे बढ़ रही थी, इसी समय उन रुहेले सैनिकों ने उन पर आक्रमण कर दिया और उनके सेनानायकों को मौत के घाट उतार दिया। दोनों पक्षों के सैनिक घोड़ों पर उतर पड़े और भूखे भेड़ियों की तरह एक दूसरे पर टूट पड़े। सवाईराम और उसके १५० राठौड़ सैनिक इस युद्ध में मारे गये। शेष जाट सेना मैदान से भाग खड़ी हुई, तब रुहेला सेना ने उसका पीछा किया।

जवाहरसिंह भी अपनी सेना की गतिविधि पर पूर्णरूप से नजर रख रहा था। उसने अपनी सेना पर इस आई हुई विपत्ति को देखकर

शीघ्र ही उमरावगिर गुसाईं के नेतृत्व में ५००० नागा सवार उसकी सहायतार्थ भेजे उनकी सहायता से जाट सेना सर्वनाश से बच गई। सूर्यास्त तक घमासान युद्ध होता रहा। नजीबुद्दौला के सैनिक हार कर अपने डेरों में वापस लौट गये। जवाहरसिंह के सैनिक भी एक घाट पर नदी पार पश्चिमी किनारे पर पहुंच गये। इस युद्ध में बलराम के सैनिकों ने बड़ी कायरता दिखाई थी और यदि नागा सवार आ कर प्राण-पण से नहीं लड़ते तो सब मारे जाते।

नवम्बर १८, १७६४ ई० को जवाहरसिंह अपने मराठा साथी व समस्त आक्रमणकारी सेना के साथ जमुना को पार करके पूर्व किनारे पर जा पहुंचा। वहां उसने नदी के किनारे पर तोपें जमा दीं तथा नदी पार से ही दिल्ली पर गोले बरसाने शुरू किये, क्योंकि नगर के पूर्व की ओर नदी के किनारे पर कोई दीवार नहीं थीं। जवाहरसिंह ने पहले शाहदरा को लूटा, जहां दिल्ली में बेचने के लिए बहुत अधिक धान संग्रहित था। वहां फर्श तक खोद डाले गये, मकान जला दिए गए और सारे नगर को बिल्कुल नष्ट कर दिया गया। पूर्वी किनारे से राजधानी के पूर्वी भाग के मकानों पर जाट गोले बरसा रहे थे। कुछ गोले शाही महलों के अन्दर भी गिरे, जहां कुछ व्यक्ति भी मरे। दीवान-ए-खास की एक कांच की तिपाई टूट गई। नवम्बर १९, १७६४ ई० में नजीब ने सिपाहियों के यमुना नदी के किनारे की रेत की खाइयों से हटकर नगर के अन्दर मकानों में शरण ली। नजीब ने बुलन्द बाग में फर्श खोद कर नीचे एक कमरा बनाया, जिस पर तख्ती की छत बनवाई और उस पर मिट्टी डाल दी। एक गज ऊंची मिट्टी की दीवार बना कर उसके पीछे रुहेले छिप गये। एवं दुर्ग प्राचीर पर लगी तोपों से भी अपनी रक्षा करते रहें। जाट तोपों के गोलों से नगर के अन्दर अनेक व्यक्ति मारे गये।

यह गोलाबारी १५ दिन तक चलती रही। प्रतिदिन प्रातःकाल

जवाहर अपनी तोपों को घसीट कर नदी के तट तक ले जाता था। दिनभर उनसे शत्रु सेना पर आग बरसाई जाती थी। सूर्यास्त के समय पुनः उन्हें वापस अपने डेरे में ले जाता था। जाट तोपों की इस गोलाबारी से सारे दिल्ली शहर में हा-हाकार मच गया। शहर के जनसाधारण का घरों से बाहर निकलना बन्द हो गया। वे भूखों मरने लगे। रुहेला प्रमुख की सेना भी भूख से व्याकुल हो गई तथापि उनसे आत्मसमर्पण नहीं किया प्रत्युत नजीबुद्दौला ने मल्हाराव होल्कर से संपर्क साध कर संधि वार्ता प्रारम्भ की। तब तो जवाहरसिंह का अपने इन मराठा मित्रों पर से विश्वास उठ गया। इस बीच सिखों के साथ बहुत समय से जवाहरसिंह की जो बात-चीत चल रही थी वह पूरी हो गई, और तब हुए समझौते के अनुसार १२-१५ हजार सिख सेना जनवरी, १७६५ ई० के प्रारम्भ में दिल्ली शहर से कोई १४ मील दूर स्थित बराड़ी घाट पर जा पहुंची। जवाहरसिंह नदी के पूर्वी किनारे से पश्चिमी किनारे पर आया और सिखों से मिला। उन्होंने उसका अनेक प्रकार से अपमान किया। किन्तु अपने सरदारों व मराठा साथी की असहयोगपूर्ण नीति को दृष्टिगत कर, उसने सिखों को अपने साथ रखने की अत्यधिक आवश्यकता को अनुभव किया। अतः उसे सिखों द्वारा किए गए अनेकानेक अपमानों की भी उपेक्षा करनी पड़ी।

अब युद्ध की नयी योजना के अनुसार जाट सेना दिल्ली के साथ पूर्वी तट पर आ खड़ी हुई। मराठा सेना भी उसी तट पर जाट सेना उत्तर में रखी गई। सिख सैनिक पश्चिमी घाट पर राजधानी के उत्तर और पश्चिम की ओर जम गए। सिख सैनिकों को यह आदेश दिया कि वे उत्तरी और पश्चिमी क्षेत्रों से खाद्य-सामग्री न आने दें। इस प्रकार नजीब की सेना घोड़े की नाल के समान तीनों ओर से

जाट में घिर गयी। उसके लिए केवल दक्षिण की राह खुली रही, उस

ओर भी जाटों का इलाका था और राह में जाटों के आधीन बल्लभगढ़ किला पड़ता था।

इसप्रकार दिल्ली में खाद्य-सामग्री पहुंचने के सारे मार्ग अवरुद्ध थे। प्रतिदिन सिख सवार नगर के बाहर घूमते रहते और शहर की ओर सारी आने वाली खाद्य-सामग्री को लूटकर उसे अपनी निजी प्रयोग में ले लेते थे। ये सिख सवार नगर के प्राचीर तक पहुंच कर नजीव की सेना पर छुट-पुट आक्रमण भी यदा-कदा किया करते थे। इनके पास तोपखाना नहीं होने के कारण दुर्ग पर हमला करना, उनके लिए संभव नहीं था। जनवरी २५, १७६५ ई० को सब्जी मंडी के निकट पहाड़ी पर एक घमासान लड़ाई हुई। नजीबुद्दौला और सिखों की सेनाओं के बीच हुई, इस लड़ाई में जाटों ने सिखों का पूरी सहायता की थी। इस युद्ध में दोनों पक्षों के अनेक सैनिक आहत हुए या मारे गये लेकिन इस युद्ध का परिणाम पहले की भांति अनर्णीत ही रहा।

इस प्रकार फरवरी के प्रथम सप्ताह तक प्रतिदिन बराबर युद्ध होता रहा। लेकिन खाद्य-सामग्री का आना सिख सेना ने बिल्कुल बन्द कर दिया था। मराठों ने भी उसके चारों ओर घेरा डाल रखा था। यों घिरे हुए इस नगर में अब अन्न का अभाव चरम सीमा पर पहुंच गया। शहर के सारे बाज़ार बन्द थे। सभी व्यक्ति भूखों मर रहे थे। कुछ प्रमुख व्यक्ति नजीबुद्दौला से शहर की जनता से ऋण लेने के लिए आग्रह कर रहे थे। शहर के सहस्रों व्यक्ति अपनी क्षुधा शान्त करने के लिए जाटों के कैम्प में जा कर भिक्षा मांगते थे, जो जाटों के सम्मुख नगर निवासियों का प्रत्यक्ष आत्म-समर्पण था। रुहेले सैनिकों को भूखों मरने की अपेक्षा युद्ध में काम आना अधिक वांछनीय था। इसलिए रुहेले सरदारों ने जाटों पर आक्रमण करने व

अपने हाथ में तलवार लेकर मरने की इजाजत नजीब से मांगी।

परन्तु वह दृढ़तापूर्ण डटा रहा क्योंकि उसे विदित था कि दिल्ली में जवाहर के उतने शत्रु नहीं हैं, जितने कि उसके अपने डेरे में।

उधर सिखों को समाचार मिले कि अहमदशाह अब्दाली सिंध नदी को पार कर चुका है और अपनी सेना सहित लाहौर की तरफ बढ़ने वाला है। तब तो अपने पंजाब प्रदेश की रक्षार्थ जवाहरसिंह को बिना बताये ही सारे सिख सैनिकों ने एकाएक वहां से पंजाब के लिए कूंच कर दिया। जवाहर के विरोधी सरदार, जो अनिच्छापूर्वक ही युद्ध में सम्मिलित हुए थे, नहीं चाहते थे कि जवाहर को सफलता मिले। जवाहरसिंह ने यह भी अनुभव किया कि मल्हारराव होल्कर और इमादउल-मुल्क की बातों पर विश्वास नहीं किया जा सकता था। जवाहर की अपनी जाट सेना में भी शिथिलता आने लगी थी, जिससे जवहारसिंह का भी साहस कम हो गया।

इसी समय फरवरी ४, १७६५ ई० को नजीबुद्दौला ने सुजानसिंह, राजा चेतराम और तेजराम कोठारी को मल्हारराव होल्कर के पास भेजा। तब फरवरी ६, १७६५ ई० को उक्त तीनों महल्हारराव के पास पहुंचे और सूर्यास्त के दो घंटे पूर्व वापस लौट आये जाबितखां ने जुमना को पार किया और गंगाधर तांतियां व रूपाराम कोठारी को अपने साथ लेकर वह नजीबुद्दौला के पास गया। तब दोनों में संधि हो गई। फरवरी ९, १७६५ को नजीबुद्दौला अपनी सेना व अब्दुल अहमद खां, याकूब अली खां व अन्य सरदारों के साथ मल्हारराव के डेरे पर गया और तदनन्तर मल्हारराव होल्कर के साथ दिल्ली के निकट शाहदरा के बाहर वह जवाहरसिंह से मिला। यों जवाहरसिंह के साथ मेल करके सूर्यास्त के पूर्व ही नजीबुद्दौला वापस दिल्ली लौट आया और साथ में भारी मात्रा में खाद्यान्न भी लेता आया।

अब जवाहरसिंह दिल्ली का घेरा उठा कर फरवरी १२, १७६५ ई० को अपनी समस्त सेना के साथ दिल्ली के दक्षिण में स्थित ओखला के लिए रवाना हुआ। फरवरी १५, १७६५ ई० को मल्हारराव होल्कर नजीबुद्दौला से मिला तब वहां एक हाथी, दो घोड़े, जवाहरात से भरी नौ तस्तरियां भेंट की गई और १२० खिलअतें उसके साथियों के लिए प्रदान की। फरवरी १६, १७६५ ई० को जाबित खां ने जवाहरसिंह से भेंट की और उसे मुगल शाहजादे की तरफ से एक हाथी, घोड़ा और खिलअत भेंट की।

इस प्रकार दिल्ली की दीवारों के सामने फरवरी १३, १७६५ ई० को जवाहरसिंह कोई एक करोड़ साठ लाख रुपये बरबाद करने के बाद वहां से चल दिया और इसके बदले में उसे सिवाय पश्चाताप के कुछ भी हाथ नहीं लगा। यद्यपि नजीबुद्दौला के विरुद्ध में वह सफलता की चरम सीमा पर पहुंच गया था, लेकिन मल्हारराव की अत्यधिक सुस्ती व प्रत्यक्षरूप से नजीबुद्दौला का पक्ष लेने के कारण उसका सारा बना बनाया खेल बिगाड़ दिया। यों विवश होकर नजीबुद्दौला के साथ की गई इस संधि से जवाहर को यत्किंचित् भी संतोष नहीं था। विश्वासघाती मल्हारराव होल्कर के दबाव से ही बाध्य होकर, उसे यह संधि करनी पड़ी थीं। अतः संधि होते ही वह दिल्ली छोड़ कर चला गया। शिष्टता के नाते उसे वापसी भेंट के लिए नजीबुद्दौला के यहां जाना चाहिए था, किन्तु उसने इसकी परवाह नहीं की और सीधा डीग के लिए रवाना हो गया।

(मनोहरसिंह राणावत द्वारा लिखित 'भरतपुर महाराजा जवाहरसिंह' से साभार)

पंजाबकेसरी महाराजा रणजीतसिंह

इतिहासकारों की मान्यता है कि शालिवाहन महाराजा रणजीतसिंह के पूर्वज थे। वे स्यालकोट के राजा थे। इसी पीढ़ी में विधासिंह हुए। विधासिंह के घर चरतसिंह ने जन्म लिया, जो सुकरचकिया मिसल के सरदार बने। जम्बू के राजा रणजीत देव मे उनके बड़े बेटे को राज दिलाने के लिए हुई लड़ाई में अपनी बन्दूक नली फट जाने से चरतसिंह घायल हो गए और बाद में देहावसान हो गया। चरतसिंह के पुत्र रत्न का नाम महासिंह था। इन्हीं को 'शेरे पंजाब' रणजीतसिंह के पिता होने का श्रेय प्राप्त है। कैप्टन दलीपसिंह अहलावत के अनुसार– ''महाराजा रणजीतसिंह की गणना भारत के महान् शासकों में की जाती है। इटालियन जाति में जुलियस सीज़र, फ्रांसिसियों में नेपोलियन, जर्मनों में लूथर, हिटलर और यूनानियों में जो स्थान सिकन्दर का है, उनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण उज्ज्वल स्थान न केवल सिखों एवं जाटों में बल्कि भारतवासियों में महाराजा रणजीतसिंह का है।''

महाराजा रणजीत का जन्म १३ नवम्बर, १७८० में गुजरांवाला में हुआ। उनका गोत्र 'शिशि' था। पिता महासिंह और माता राजकौर थीं। ५ वर्ष की अवस्था में बालक रणजीतसिंह को विद्यालय में भेजा गया परन्तु पढ़ाई में रुचि न होने के कारण पढ़ाना बन्द कर दिया। अभी बालक रणजीत केवल १२ वर्ष के ही थे कि पिता का देहान्त हो गया। १७९२ से १७९७ तक सुकरचकिया मिसल का शासन व प्रबन्ध माता राजकौर ने दीवान लखपत राय की मदद से सम्भाला।

पंजाब केसरी महाराजा रणजीत सिंह
(१३ नवम्बर, १७८०–२७ जून, १८३९ ईस्वी)

माता राजकौर जींद के राजा गजपतसिंह की पुत्री थीं। रणजीतसिंह की दादी ने भी अपने पुत्र के नाबालिग होने पर राज्य की व्यवस्था सम्भाली थी। वह साहसी और कुशल प्रशासिका थीं। इस प्रकार बालक रणजीतसिंह को अपने पूर्वजों से ही साहस, निर्भकता और कुशल शासक के गुण विरासत में मिले। रणजीत पढ़े-लिखे नहीं थे परन्तु शासन-प्रबन्ध में कुशल थे।

बचपन में बालक रणजीतसिंह को चेचक निकली, जिसमे उनकी बाईं आंख जाती रही। चौधरी अजयसिंह के अनुसार – "...उनके मुंह पर दाग बन गए, किन्तु कालान्तर में उनकी शारीरिक कुरुपता को उनकी वीरता तथा देशभक्ति पूर्ण कामों ने धो दिया। वह जाट जाति, सिख धर्म, पंजाब और अन्ततः देश के लिए गौरव के प्रतीक बन गए।" उनका स्वास्थ्य अच्छा था। शरीर मझला और सुदृढ़ था। चेहरे पर दाग थे लेकिन तेज छाया हुआ था। उनका सिर बड़ा और रंग गोरा था। उनका पहला विवाह महताबकौर से और दूसरा विवाह नकई सरदार रामसिंह की बेटी से हुआ।

सन् १८०१ तक रणजीतसिंह का सभी शासक लोहा मान चुके थे। अतः सन् १८०१ तक उन्होंने लाहौर में दरबार किया। आसपास की मिसलों ने भेंट दी, राजतिलक किया गया और महाराजा घोषित किया गया। इसके बाद लाहौर में टकसाल की स्थापना की गई। न्यायालय स्थापित किये गए। हिन्दू तथा मुसलमानों का समान रूप से शासन में सम्मान दिया गया। मोतीराम को दीवान बनाया। काजी निजामुद्दीन को न्याय सचिवनियुक्त किया गया और इमामबख्त को शहर का कोतवाल। दरबार के बाद महाराजा ने नाम का सिक्का जारी किया गया और राजकोष में से निर्धनों और असहायों को दान दिया गया।

महाराजा रणजीत ने अपनी छोटी सी सुकरचकिया मिसल को एक विशाल राज्य में परिवर्तित कर दिया था। जनरल कनिंघम ने उनके राज्य की सीमा इसप्रकार बताई है– "दिल्ली से पेशावर और सिन्ध से कराकोरम पर्वत श्रेणी तक विशाल भूखंड में उनका अधिकार और आधिपत्य है। पानीपत से खैबर तक ४५० मील परिमित एक भूमि रेखा खींचने में उसके दो समबाहु त्रिभुज अंकित हो सकते हैं। रणजीतसिंह का विजित राज्य और सिख जाति का स्थायी उपनिवेश समूह उसके ही अन्तर्गत है।"

महाराजा ने अपने राज्य की राजधानी लाहौर को बनाया। उन्होंने अपने राज्य को चार भागों में बांट रखा था– (१) लाहौर, (२) मुलतान, (३) कश्मीर (४) पेशावर। तत्कालीन भारतीय राजाओं से उनका राज्य अधिक सम्पन्न और सुदृढ़ था। उन्हें यदि अन्तिम स्वतंत्र हिन्दू सम्राट् कह दिया जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। भूतपूर्व रेल उपमंत्री चौधरी अजयसिंह के शब्दों में, "महाराजा रणजीतसिंह भारत की एक ऐसी सपूत सन्तान थी, जिसने कभी चाणक्य, चन्द्रगुप्त तथा महाराजा सूरजमल की तरह स्वाधीन तथा शक्तिशाली भारत बनाने का स्वप्न देखा था और अपनी सारी शक्ति इस स्वप्न को पूरा करने पर लगाई थी।"

महाराजा रणजीतसिंह जी के दरबार में ३७ यूरोपियन पदाधिकारी थे। उन्होंने महाराजा की सेना को यूरोपियन ढंग से गठित किया। अमृतसर और तत्कालीन राजधानी लाहौर में बारूद बनाने के कारखाने स्थापित किए। राज्य की रक्षा के लिए ८२०१४ सैनिक थे। विदेशी समालोचक प्रिन्सेस ने लिखा है– "एक अकेले आदमी द्वारा इतना विशाल राज्य इतने कम अत्याचारों के द्वारा कभी स्थापित नहीं किया गया।" श्री राजपाल शास्त्री ने महाराजा के विषय में कितने सटीक शब्दों का प्रयोग किया है– "अद्भुत

योग्यता धीरता, शूरता में वे समकालीन सभी भारतीय नरेशों के सिरमौर थे। दूसरे शब्दों में पंजाबकेसरी भारत के नैपोलियन थे।"

महाराजा रणजीतसिंह के अंग्रेजों से संबंध न अधिक अच्छे रहे और न बुरे। वे प्राय: संघर्ष को टालना पसन्द करते थे। सन् १८०० में अंग्रेजों ने अपना एक राजदूत महाराजा के दरबार में भेजा। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों ने विदेशी आक्रमण का मुकाबला करने के लिए सहमति दर्शायी। १८०५-६ में मराठा सरदार होल्कर अंग्रेजों से पराजित होकर महाराजा की शरण में आना चाहता था परन्तु नकारात्मक रूख देखकर हतोत्साहित हो गया। अंग्रेजों को अत्यधिक प्रसन्नता हुई और एक मैत्री सन्धि कर ली। जिसके अनुसार दोनों ने एक दूसरे के शत्रुओं को शरण न देना स्वीकार कर लिया। १८२८ में अंग्रेजी गवर्नर जनरल लॉर्ड एम्डर्स्ट के शासनकाल में अंग्रेजों ने महाराणा को और महाराजा ने अंग्रेजों को मित्रता के मिशन भेजे। १८३१ ई० में लार्ड विलियम बैंटिक ने रोपड़ में एक भव्य दरबार का आयोजन किया और महाराजा रणजीतसिंह को उसमें आमंत्रित किया और शानदार स्वागत किया। इस दरबार से सिखों और अंग्रेजों में निकटता आई। एक-दो बार संघर्ष का समय भी आया परन्तु अपनी राजनीतिक सूझ-बूझ के कारण महाराजा ने अंग्रेजों से टक्कर लेना उचित नहीं समझा क्योंकि वे जानते थे कि अंग्रेजों की शक्ति और उनके साधन बहुत अधिक हैं।

महाराजा रणजीतसिंह सिख मत के अनुयायी थे। अन्य मतों को भी आदर की दृष्टि से देखते थे और मन्दिर-मस्जिदों में भी जाते थे। स्वयं पढ़े-लिखे न थे पर पुस्तकालयों को संरक्षण देते थे। पेशावर के हमले के समय मुसलमान संत चमकान्नति के पुस्तकालय को क्षति न पहुंचाने का आदेश दिया था। कहा जाता है

कि वे दरबार के पत्रों में संशोधन भी करवा दिया करते थे। इनमें व्यावहारिक बुद्धि की बहुलता थी।

महाराजा तलवार चलाने के प्रेमी और बर्छी-भाला तथा तीर कमान में पारंगत थे। उद्दण्ड घोड़ों को सिद्ध करने में बहुत माहिर थे। विभिन्न विषयों की जानकारी प्राप्त करने का चाव था। उनकी जिज्ञासु प्रवृत्ति के विषय में फ्रांसीसी यात्री ने लिखा है, ''महाराजा रणजीतसिंह पहला भारतीय है, जो जिज्ञासु प्रवृत्ति में सम्पूर्ण राजाओं से बढ़ा-चढ़ा है। वह इतना बड़ा जिज्ञासु कहा जाना चाहिए कि मानों अपनी सम्पूर्ण जाति की उदासीनता को वह पूरा करता है। वह असीम साहसी, शूरवीर है। उसकी बातचीत से सदा भय सा लगता था।''

वे सही अर्थों में एक दयालु व धर्मप्रेमी राजा था। प्रजा उनसे प्रसन्न थी। विदेशी भी उनके गुणों से प्रभावित थे। तभी तो विदेशी यात्री आसवार्न ने लिखा है– ''युद्ध के अवसरों को छोड़कर उसने कभी किसी के प्राण नहीं लिए जबकि स्वयं उसके जीवन पर कई घातक आक्रमण हुए थे। उसका विंशाल राज्य अधिकाधिक सभ्य नरेशों की तुलना में निर्दयता और दमन के कार्यों से मुक्त पाया जाएगा।''

महाराजा रणजीतसिंह जी की १८ रानियां थीं। कैप्टन दलीप सिंह अहलावत ने इस संदर्भ में कहा है– ''भारत के हिन्दू नरेशों में महाराजा जवाहरसिंह भरतपुर नरेश और पंजाबकेसरी रणजीतसिंह ही ऐसे थे, जिन्होंने मुसलमानों की ललनाओं के डोले लिए। वरना ग्यारहवीं शताब्दी से यही होता रहा कि भारत के राजपूत नरेशों की ललनाओं को मुसलमान शासक अपनी बेगम बनाते रहे थे। यह सिख एवं खासतौर से जाट जाति के लिए स्वाभिमान की बात है।'' महाराजा के सात पुत्र थे। एक पुत्र का

नाम दिलीपसिंह था, जिसे अंग्रेजों ने ईसाई मत में दीक्षा दिला कर अंग्रेज कन्या से विवाह करवा दिया था। महारानी जिन्दा दिलीपसिंह की माता और महाराजा की अन्तिम रानी थी। महाराजा का देहान्त २७ जून, १८३९ को हुआ।

महाराजा के देहान्त के बाद से ही सिखों का पतन आरम्भ हो गया। बाद के उत्तराधिकारी अयोग्य और अस्थिरचित्त थे। दरबार में षड्यन्त्र रचे जाने लगे। पंड़ित परमेश शर्मा के अनुसार– "इस साम्राज्य के पतन एवं विनाश में दो व्यक्ति और प्रमुख थे, जो अपना कौशल बड़े आड़े समय दिखा गए– वे थे ब्राह्मणकुल कलंक तेजसिंह और लालसिंह जो सेनापति के वेश में सामने आए और विश्वासघाती कृतघ्न रूप में अपने ऊपर कलंक का टीका लगवा गए।"

महाराजा ने गुरु गोविन्दसिंह के मत को सैनिक शक्ति के बल पर प्रतिष्ठित किया था। उन्हीं के प्रभाव से उत्तर भारत की रक्षा करने में जाट जाति को ऐतिहासिक महत्त्व मिला। उन्होंने सिख कौम को बहादुर बना कर देश के शत्रुओं का सफाया करने में लगाया। यदि वे न होते तो पश्चिमोत्तर प्रदेश, पंजाब और कश्मीर भारत से अलग हो गए होते। निस्संदेह उनमें एक जन्मजात शासक की विशेषताएं थीं।

अमर क्रान्तिकारी राजा नाहर सिंह
(देहान्त ९ जनवरी १८५८ ईस्वी)

१९४७ में आपने मंत्रिमण्डल में त्यागपत्र दे दिया। इस अवधि में

अमर क्रान्तिकारी राजा नाहरसिंह

सुरेन्द्र सिंह, एम.ए. (इतिहास, राजनीतिशास्त्र)

बल्लभगढ़ का राजा नाहरसिंह १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की प्रमुख हस्तियों में से एक था परन्तु फिर भी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उसे वह प्रसिद्धि और स्थान प्राप्त नहीं हुआ जिसका वह हकदार था। अंग्रेजों ने भारत के इस महान सपूत को ९ **जनवरी, १८५८** को धोखे से गिरफ्तार करके दिल्ली के चांदनी चौक में ऐतिहासिक कोतवाली में **३४ वर्ष की आयु** में फांसी पर लटका दिया था, क्योंकि उसने १८५७ के विद्रोह में अंग्रेजों को दिल्ली में प्रवेश करने से रोका था। जिस किसी ने भी उसकी सहायता की या उसके साथ मित्रता की उसका भी यही हस्र हुआ। किन्हीं अज्ञात कारणों से वह जीवनी लेखकों की नजर से बचा रहा है। विद्वानों और लेखकों ने अभी भी इस महान योद्धा के इतिहास पर ध्यान नहीं दिया है जबकि उसके समकालीन अर्थात् राव तुलाराम, बहादुरशाह जफर, रानी लक्ष्मी बाई, तांत्या टोपे आदि पर बहुत लिखा जा चुका है। राष्ट्रीय अभिलेखागार में रखे पुराने दस्तावेजों, ऐतिहासिक वृतांतों, सैनिक या असैनिक रिपोर्टों तथा उस समय के गोपनीय पत्राचार से इस महान योद्धा के बारे में काफी कुछ जानने को मिलता है। आज भी वृजभाषा के लोकगीतों और गौरव गाथाओं में नाहरसिंह के महान बलिदान का खूब बखान किया जाता है। परन्तु उसके बारे में उपलब्ध अधिकांश सामग्री अंग्रेजों की लिखी हुई है क्योंकि अन्य भारतीय शासकों की तरह उसने भी अपने शोषण का कोई लेखा-जोखा पीछे नहीं छोड़ा। यह

स्पष्ट है कि अंग्रेजों ने अपने लेखों में उसे यथोचित स्थान प्रदान नहीं किया क्योंकि उनकी यह नीति थी कि भारतीय योद्धाओं की आने वाली पीढ़ियां अपने गौरवशाली अतीत से अनभिज्ञ रहे ताकि उनमें आत्मसम्मान की भावना जागृत न हो और वे अंग्रेजों का विरोध न कर सकें।

दिल्ली के पड़ोस में एक छोटे से हिन्दू राज्य, बल्लभगढ़ की स्थापना जाट समुदाय के किसी गोपालसिंह ने १८वीं शताब्दी के पहले दशक में की थी। परन्तु इस जाट राज्य की स्थापना और एकीकरण में प्रमुख योगदान चरणदास और उसके पुत्र बलराम उर्फ बल्लू का है जिन्होंने औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुंगल साम्राज्य के उपद्रवों के दौरान एक छोटा और व्यवस्थित राज्य बना डाला। राजा बलराम ऊर्फ बल्लू ने अपने नाम पर बल्लभगढ़ की आधारशिला रखी, जो भविष्य में उनके राजकुल की राजधानी बना। इस राजकुल का गोत्र (उपजाति) तेवतिया था। यह एक किसान राजकुल था, जिसके झंडे पर हल के निशान थे। राजा नाहरसिंह, जो विद्रोह के समय राज्य का मुखिया था, राजा बलराम का पुत्र था। बदले की भावना में अंग्रेजों ने नाहरसिंह की सारी भू-सम्पति जब्त कर ली, उसके राज्य को अपने साथ जोड़ लिया, घर की महिलाओं के जेवर उतार लिए और फिर उन्हें निर्वस्त्र करके कोड़े बरसाए, मंदिरों, महलों और अन्य स्मारकों में से कुछेक बच गए थे और अब जीर्ण अवस्था में है। जिनको तोड़ दिया था ताकि कभी किसी को इस राजवंश की, जिसने अंग्रेजों का विरोध किया था, याद भी न रहे।

१८०३-१८५६ के बीच तथाकथित ईस्ट इंडिया कम्पनी ने विभिन्न समुदायों अर्थात् जाटों, अहीरों, मेवों, राजपूतों, मुसलमानों, गुजरों आदि स्थानीय लोगों पर इस राजवंश का

आधिपत्य कमजोर करने के लिए अनेक बार अथक प्रयास किये परन्तु कंपनी की यह दुष्ट चाल सफल नहीं हो सकी। १८५४ में कुछ अंग्रेजी अधिकारी शिकार के बहाने मेवात क्षेत्र में घुस गये और नगीना गांव के कुछ मेव चौधरियों को पकड़ लाये। इस चिन्ताजनक घटना पर विचार करने के लिए मेवों की पंचायत हुई जिनमें यह निर्णय किया गया कि मेव चौधरियों को अंग्रेजों के पंजों से छुड़ाने के लिए बल्लभगढ़ के राजा नाहरसिह की सहायता ली जाए। इसके परिणामस्वरूप, उक्त घटना की सूचना देने और अलीपुर (दिल्ली) में होने वाली सर्वखाप पंचायत में आने का अनुरोध करने के लिए इस मेव पंचायत के कुछ प्रमुख सदस्य बल्लभगढ़ में नाहर सिह से मिले। इस सर्वखाप पंचायत में गंगा और घग्गर नदियों के बीच की ग्राम पंचायतों के लगभग सभी प्रधानों और प्रभावशाली व्यक्तियों ने भाग लिया। एक प्रमुख व्यक्ति होने के नाते राजा नाहरसिह ने इस पंचायत में काफी लम्बा-चौड़ा भाषण दिया और अंग्रेजों के इस विश्वासघाती कार्य की सार्वजनिक रूप से निंदा की। उसने शक्तिशाली ईस्ट इंडिया कम्पनी को यह चेतावनी भी दे दी कि यदि मेव चौधरियों को तुरन्त नहीं छोड़ा गया तो उसके गम्भीर परिणाम होंगे। स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए कंपनी ने मेव चौधारियों को मुक्त कर दिया परन्तु भविष्य में अपनी दुष्ट कार्यवाहियों का मुख्य लक्ष्य नाहरसिह को बना लिया।

सर्वखाप पंचायत और विशेषकर राजा द्वारा किये गये अपमान का बदला लेने के लिए कंपनी ने (१८५६ में) बल्लभगढ़ के दीवान बांकेलाल को राजकोष से भारी धनराशि का गबन करने का प्रलोभन दिया और ऐसा करने पर उसे दिल्ली में ब्रिटिश रैजीडैण्ट द्वारा आश्रय प्रदान किया गया। इससे नाहर सिंह इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने इस विश्वासघाती कार्य की सार्वजनिक रूप से

आलोचना की और यहां तक की कम्पनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने की भी तैयारी कर ली। परन्तु राजपुरोहित पण्डित नारायण सिह सहित उसके सलाहकारों ने उसे ऐसा करने से रोका। उसे यह सलाह दी गई कि कम्पनी की शक्तिशाली सेनाओं का मुकाबला करने का अभी समय नहीं है क्योंकि राजा की सेना का अब पुनर्गठन और तैयारी की जानी है। अतः राजा इस घटना को बड़े रोष और क्रोध के साथ अपने मन में दबा कर यह कड़वा घूंट पी गया।

१८५६ के अन्त तक विद्रोह के काले बादल भारतीय आकाश पर छाने लगे। इसलिए राजा विद्रोह के खतरे से निपटने के लिए अपनी सेना के पुनर्गठन और तैयारी के कार्य में जुट गया। उसके आवाहन पर हरियाणा के, विशेषकर गांव के हजारों लोग, जिनमें से अधिकांश भोले, गरीब और निरक्षर थे, उसकी सेना में शामिल हो गए। दूर-दूर से आए इन लोगों ने अपने नेता नाहरसिह के नेतृत्व में इस सांझे संघर्ष में सक्रिय रूप से भाग लिया। एक सच्चे देशभक्त के नाते वह होने वाले विद्रोह में अंग्रेजों से लड़ना चाहता था। ऐसा ही उसने किया भी। एक सेना बनाई, उसे प्रशिक्षण दिया, संगठित किया और पूरी ताकत से लड़ाई लड़ी, परन्तु समाप्त हो गया।

२९ मार्च, १८५७ को बैरकपुर में मंगलपांडे के नेतृत्व में विद्रोह की शुरूआत का समाचार उत्तरी भारत में बहुत तेजी से फैला और अपने नेताओं के साथ स्थानीय लोग ब्रिटिश शासन के विरुद्ध तत्काल उठ खड़े हुए। ११ मई, १८५७ को अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर के राज में दिल्ली भी इस विद्रोह में फंस गई। इस बात की पुष्टि करने के लिए अनेकं साक्ष्य हैं– कि दिल्ली में विद्रोह होने वाले दिन राजा नाहरसिह बहादुरशाह से विचार–विमर्श कर रहे थे। मुगल सम्राट ने राजा से अपने क्षेत्र

बल्लभगढ़ में जाकर प्रबंध कार्य करने के लिए कहा था। इसके परिणामस्वरूप नाहरसिह अगले दिन अर्थात् १२ मई, १८५७ को बल्लभगढ़ पहुंच गए। अचानक विद्रोह हो जाने के कारण राज के लिए अपनी एकमात्र पुत्री का विवाह फरीदकोट के राजकुमार विक्रम सिंह से साथ पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार १७ मई, १८५७ को करना असंभव हो गया। दोनों पक्षों के बीच हुए एक समझौते द्वारा नाहरसिह की पुत्री के फैरों की रस्म राजकुमार की सोने की तलवार के साथ पूरी की गई। इस प्रकार राजा अपने इस कर्तव्य और उत्तरदायित्व से मुक्त हुआ।

शिव मंदिर (बल्लभगढ़) में नाहरसिह ने फिरंगियों को अपनी धरती से बाहर भगाने की शपथ ली और इस प्रकार पूरे तन-मन से विद्रोह में शामिल हो गया। उसने तुरन्त दिल्ली और बल्लभढ़ के सारे क्षेत्र को जीत लिया और मुगल सम्राट के साथ उसका सीधा सम्पर्क स्थापित हो गया और उसने विद्रोहियों की सैनिकों, धन और सामग्री से बहुत सहायता की। उसने मुगल सम्राट को अनेक पत्र लिखे और दफेदार कलन्दर बक्श के नेतृत्व में ३० घुडसवारों का एक दस्ता भी दिल्ली भेजा। बाद में कलन्दर बक्श को इम्पीरियल कोर्ट में राजा का गोपनीय एजेंट नियुक्त किया गया। नाहरसिंह के अतुलनीय राजनीतिक कौशल, कुटनीति और नेतृत्व शक्ति से प्रभावित होकर मुगल सम्राट ने उसे ऐसे समय में दिल्ली के आंतरिक प्रशासन का प्रभारी बना दिया जब दिल्ली अनेक तथाकथित भारतीय शासकों की सहायता से ब्रिटिश सेना के संयुक्त आक्रमणों का मुकाबला कर रही थी। नाहरसिह की सिफारिश पर ही मुगल सम्राट् ने राय (जिला मथुरा) के राजा देवीसिह जाट, जिसने विद्रोह किया था और लड़ाई में हारने के पश्चात् अंग्रेजों ने जिसे ४ मार्च, १८५८ को फांसी लगा दी थी, को निचले दोआब

देश में राजस्व एकत्र करने के लिए परवाना जारी किया था। अमीर-ए-उमारा के कड़े विरोध के बावजूद नाहरसिंह आंतरिक प्रशासन का प्रभारी बना रहा और उसने दिल्ली के हारने तक प्रशासकीय और सैन्य मामलों को बड़ी कुशलता से पूरा किया।

बादली-की-सराय की लड़ाई (८ जून, १८५७) में राजा नाहर सिंह के स्थानीय लोगों की सहायता से अंग्रेजों के आक्रमणों की सख्ती से नाकाम कर दिया। इस भयंकर लड़ाई में एक-एक इंच भूमि के लिए बहुत साहस के साथ मुकाबला हुआ और बड़ी संख्या में दोनों ओर के लोग मारे गए। परन्तु इस लड़ाई की उपलब्धि से भी दिल्ली की हार नहीं टल सकी। दिल्ली की हार (२२ सितम्बर, १८५७) और मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर के पकड़े जाने से विद्रोह का भावी रास्ता बदल गया। उस घटना पूर्ण दिन एक समय के शक्तिशाली मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर का क्षीण होता चिराग सदा के लिए बुझ गया।

दिल्ली पर कब्जा होने से भी नाहरसिंह निराश नहीं हुए। एक देशभक्त और धरती मां का विनम्र सपूत होने के नाते उसने नई परिस्थितियों का साहस और धैर्य के साथ स्वीकार किया। उसने तुरन्त अंग्रेजों के पलवल, पाली और फतेहगढ़ परगनों पर कब्जा कर लिया। यह भली भांति जानते हुए भी कि दिल्ली की वास्तविक शक्ति मुगल सम्राट के हाथों से चली गई है। नाहरसिंह के अंग्रेजों के आधीपत्य को कभी मान्यता नहीं दी। उल्टे वह सदा मुगल सम्राट के प्रति वफादार रहा।

काफी समय तक अंग्रेज नाहरसिंह को सबक सिखाने के अवसर का बेताबी से इंतजार कर रहे थे। ३१ अक्तूबर, १८५७ को ब्रिगेडियर सोवर्स के नेतृत्व में एक सैनिक टुकड़ी ने बल्लभगढ़ के किले का घेरा डाल लिया। इसके परिणामस्वरूप किले से लड़ाई

लड़ी गई। जिसमें बड़ी संख्या में अंग्रेज सैनिक मारे गए। राजपरिवार की महिलाओं के स्नान वाला तालाब, रामसरोवर फिरंगियों के खून से भर गया। प्रचलित लोकगीत भी इसकी पुष्टि करते हैं कि अंग्रेजों का अकल्पनीय नुकसान हुआ। शायद विद्रोह के दौरान इतने अधिक अंग्रेज और कहीं नहीं मारे गए।

बहादुर राजा और उसकी सुनियोजित युद्ध तकनीकों का सामना करने में बिल्कुल असफल रहने पर अंग्रेज हिन्दू राज्य के इस उगते सूरज को खत्म करने के लिए विश्वासघाती कार्यवाहियों में लग गए। इसके परिणामस्वरूप नाहरसिंह के विरुद्ध एक षड्यंत्र रचा गया। एक संदेशवाहक के द्वारा बल्लभगढ़ यह सूचना भेजी गई कि कैद में पड़े मुगल सम्राट बहादुरशाह और अंग्रेजों के बीच आपसी समझबूझ के आधार पर एक समझौता हो रहा है और इसलिए ऐसे निर्णायक समय में बहादुरशाह ने राजा को उपस्थित रहने को कहा है। राजा ने अपने करीबी मंत्रियों की इस सलाह को नहीं माना कि वे दिल्ली न जाएं क्योंकि ऐसा करने पर अंग्रेज, जो उन्हें मुर्दा या जिन्दा पकड़ना चाहते हैं, उन्हें गिरफ्तार कर सकते हैं। तदनुसार राजा अपने कुशल सिपाहियों, जनरलों और शीर्ष विश्वासपात्रों अर्थात् भूरासिंह, गुलाबसिंह को साथ लेकर दिल्ली चल पड़े। उन्होंने मुश्किल से बदरपुर (दिल्ली और फरीदाबाद के बीच स्थित) को पार किया था कि पास के जंगल में छिपे अंग्रेजों ने उन पर घात लगाकर हमला कर दिया। दोनों में भीषण युद्ध हुआ और दोनों पक्षों के बड़ी संख्या में सैनिक मारे गये। यद्यपि राजा नाहरसिंह पर यह हमला अचानक हुआ फिर भी वह बहुत बहादुरी से लड़ा परन्तु गंभीररूप से घायल होने के बाद अचेत होकर गिर पड़ा। उसे तुरन्त पकड़ लिया गया और दिल्ली लाकर फांसी दिए जाने तक मटिया महल (दिल्ली) में रखा गया। नाहरसिंह को

अचानक कैद किए जाने से विद्रोह का भावी रास्ता बदल गया था। यूं कहें कि नाहरसिंह को फांसी दिए जाने से यह विद्रोह अपनी एकता और प्रेरणा के प्रतीक से वंचित हो गया।

नाहरसिंह पर मुकद्दमा शुरू किए जाने से पूर्व यह प्रयास किए गए कि वह अपनी गलती मान ले और क्षमा मांग ले क्योंकि उसका राज चलाने के लिए उसका अपना कोई पुत्र नहीं था। नाहरसिंह के एक निकट संबंधी फरीदकोट के महाराजा के अनथक प्रयासों का भी कोई परिणाम नहीं निकला। एक चट्टान की भांति राजा अपने इस मत पर दृढ़ थे कि वे क्षमा मांगने की बजाय मर जाना बेहतर समझते हैं। इसके परिणामस्वरूप १९ दिसम्बर, १८५७ को उन पर मुकद्दमा शुरू हुआ। ब्रिटिश आयोग ने नाहरसिंह को २० मई से १६ अगस्त, १८५७ तक उसके और मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर के बीच फारसी और उर्दू में लिखे गए सोलह पत्रों (जो दिल्ली के राष्ट्रीय अभिलेखागार में रखे हुए हैं) के आधार पर कैद की सजा सुनाई। वास्तव में अन्य बातों के साथ-साथ ब्रिटिश आयोग को इन पत्रों के बाद में नाहरसिंह के विरुद्ध आरोप गढ़ने का आधार मिल गया कि उसने विद्रोहियों के साथ देश—द्रोहपूर्ण पत्राचार किया। अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने के लिए सेना, धन और सामग्री से इनकी सहायता की और अंग्रेजों ने पलवल परगाना पर अवैध कब्जा किया। यहां यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यह आयोग पक्षपातपूर्ण था और इसकी कार्यवाही एक ढोंग थी क्योंकि इसमें.... विद्रोहियों को अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने का अवसर प्रदान करना हिन्दुस्तान की भोली-भाली गरीब और निरक्षर जनता को धोखा देने की एक औपचारिकता मात्र थी। अंग्रेजों ने राजा नाहरसिंह को, जो ईस्ट इंडिया कम्पनी की साम्राज्यवादी अलोकतांत्रिक और दमनकारी नीतियों के विरुद्ध

लड़ा, २ जनवरी, १८५८ को फांसी की सजा सुनाकर कानूनी और न्यायिक प्रक्रिया की उन सभी मानदण्डों और सिद्धांतों की धज्जियां उड़ा दी, जो उन दिनों भी ब्रिटेन में आदर सहित माने जाते थे।

९ जनवरी, १९५८ को अपने महान नायक की अंतिम झलक पाने के लिए एकत्रित हुई दिल्ली और उसकी आस-पास की बिलखती जनता को नियंत्रित करने के लिए भारी संख्या में अंग्रेज सैनिकों ने चांदनी चौक जाने वाली प्रत्येक सड़क या गली को रोक दिया था। यह भली-भांति जानते हुए कि राजा नाहरसिंह काफी लम्बे समय तक लोगों का चहेता नायक रहा है, अंग्रेजों ने जनता को हराने के लिए आतंक की नीति अपनाई। इतना होने पर भी लोगों की जुबान पर यह दोहा था, जो अब एक लोकगीत बन चुका है तथा अत्याधिक गर्व और आदर के साथ गाया जाता हैः-

मथुरा से दिल्ली, नाहर सारे तेरे लाल
चढ़ जा शूली पर, सब भली करेंगे भगवान।।

(हे नाहर मथुरा से दिल्ली तक सब तेरे पुत्र हैं। जा फांसी के फन्दे पर चढ़ जा, भगवान सब भला करेंगे)

इस दोहे से यह पता चलता है कि नाहरसिंह के शहीद होने के समय उसका कोई अपना पुत्र नहीं था परन्तु स्थानीय लोग उससे अत्याधिक प्यार करते थे। उस समय सब क्रोध से भर उठे, जब नाहरसिंह को चारों ओर से जंजीरों में जकड़ कर एक ऊंट गाड़ी में फांसी देने के स्थान अर्थात् दिल्ली के चांदनी चौक में कोतवाली में लाया गया। उस समय स्थानीय लोगों की आंखों से आंसू ढुलकने लगे और दिल रोने लगा। जब नाहरसिंह ने फांसी के फन्दे को स्वीकार किया, उसे चूमा और अपने आप ही अपनी गर्दन में डाल लिया। उसने वहां खड़े ब्रिटिश अधिकारियों के सामने शेर की तरह दहाड़ते हुए कहा था "नाहर फिर पैदा होगा।" उसकी रानी ने, जो

राजा को फांसी दिये जाने के समय गर्भवती थी, बाद में एक पुत्र को जन्म दिया। इस प्रकार इस "विस्मृत शहीद' के छोटे परन्तु शानदार जीवन का अन्त हुआ। उसकी मृत्यु के साथ ही इस जाट राज्य का सूरज भी सदा के लिए अस्त हो गया। राष्ट्रीय अभिलेखागार में रखे एक दस्तावेज से पता चलता है कि नाहर सिंह को फांसी दिये जाने का समाचार सुन कर अपदस्थ मुगल सम्राट बहादुरशाह फूट-फूट कर रोने लगा और एक समय के अपने इस निकट सहयोगी की मृत्यु का शोक मनाने के लिए उसने उस दिन भोजन नहीं किया। राजा के अंतिम संस्कार के समय दंगा होने की आशंका के कारण अंग्रेजों ने बाद में उसका अंतिम संस्कार चुपके से निगमबोध घाट, दिल्ली में कर दिया।

राजा नाहरसिंह एक सच्चा नायक और देशभक्त था। अपने नाम नाहर (नाहर का अर्थ है शेर) की भान्ति उस समय भी बड़ी बहादुरी और दिलेरी से लड़ा जब हमारे देश के दो महान लडाकू समुदाय– सिख और राजपूत या तो चुप थे या अप्रत्यक्षरूप से अंग्रेजों की सहायता कर रहे थे। विद्रोह की आग उत्तरी भारत से आगे नहीं फैल सकी और उत्तरी भारत में भी यह केवल कुछ मुख्य केन्द्रों अर्थात् दिल्ली, कानपुर, मेरठ, झांसी और बल्लभगढ़ आदि सहित वर्तमान हरियाणा के कुछ भागों तक ही सीमित थी। निसंदेह बहादुरशाह, झांसी, तांत्या टोपे तथा विप्पलव के मान्य नेता अपने एक ही शत्रु (फिरंगियों) से लड़ रहे थे, परन्तु उनकी लड़ाई की योजना और संगठन के अभाव में अलग-अलग ढंग से लड़ी जा रही थी। अन्य विद्रोहियों की तरह नाहरसिंह भी अलग-थलग था। इसके अतिरिक्त शक्तिशाली और अजेय अंग्रेजों से लड़ना कोई आसान काम नहीं था। राजा के मुकदमें की कार्यवाही को सावधानीपूर्वक और न्यायोचित ढंग से पढ़ने पर यह पता चलता है

कि वह दिल से अंग्रेजों के साथ नहीं था। अपने बयान में दिये गये उसके बयान में भी नाहर सिह से मुगल सम्राट का साथ देने नथा व्रिदोहियों को सैनिकों और सामग्री की मदद देने की वात कही है। राजा के उसी वयान के कारण अंग्रेजों के दिलों में जल रही वदले की आग नहीं वुझ सकी और इसी के परिणामस्वरूप उसे यह दण्ड दिया गया।

राजा का धार्मिक दृष्टिकोण उल्लेखनीयरूप से धर्मनिरपेक्ष था। इस बात का पता नाहरसिंह द्वारा मुगल सम्राट वहादुरशाह को लिखे गये एक पत्र से चलता है। इस पत्र में नाहरसिंह के अपने राज्य में सांप्रदायिक सौहार्द कायम करने के लिए उसके द्वारा किये गये उपायों के वारे में वहादुरशाह को इस प्रकार विस्तृत व्यौरा दिया है. ''यद्यपि मैं हिन्दू धर्म को मानता हूं, परन्तु फिर भी मैं मुसलमान नेताओं के निर्देशों का पालन करता हूं और उस धर्म के अनुयायियों का आज्ञाकारी हूं। मैंने तो किले (वल्लभगढ़) में संगमरमर की एक विशाल ईदगाह का भी निर्माण करवाया है। '' राजा ने अपने प्रशासन में जिम्मेदार पदों पर अनेक मुसलमान अधिकारियों को भी नियुक्त किया था। इस संदर्भ में यहां दफ़ेदार कलन्दर वक्श, जिसे राजा के गोपनीय एजेन्ट के रूप में मुगल कोर्ट में भेजा गया था, का उद्धरण देना उचित होगा। इसके अतिरिक्त मुगल सम्राट वहादुरशाह के प्रति उसकी अटूट वफादारी और नगीना गांव के मेव चौधरियों को वचाने के लिए समय पर की गई सहायता नाहरसिंह के धर्मनिरपेक्ष चरित्र को दर्शाती है।

नाहरसिंह की सैन्य प्रतिभा, स्वाधीनता के प्रति प्रेरणा, चरित्र की दृढ़ता, पक्का निश्चय और देशभक्ति तथा अपनी जनता के हित के लिए जीवनभर किए गए वलिदान, उसकी चरित्र की अनोखी-विशेषताएं हैं। यहां तक कि पंजाव के तत्कालीन मुख्य

आयुक्त, लारेन्स ने भी यह कह कर उसकी सैन्य प्रतिभा और युद्ध–कौशल को स्वीकार किया है कि "जब तक दिल्ली की कमान बल्लभगढ़ के नाहरसिंह के हाथों में है तब तक दिल्ली पर विजय पाना हमारे लिए कठिन है।" अमृतसर के तत्कालीन उपायुक्त, फरैडरिक कूपर द्वारा लिखित "क्राइसिस इन पंजाब" नामक पुस्तक (१८५८ में प्रकाशित) में भी उसे अदम्य साहस का वर्णन मिलता है। ३४ वर्ष की अल्प आयु में ही नाहरसिंह की मृत्यु से उसकी जनता को भारी सदमा पहुंचा जिससे उसका छोटा-सा राज्य पूरी तरह हिल गया। यदि उसे जीवन के और दो दशक मिल जाते तो वह अपना राज्य कहीं अधिक खुशहाल और मजबूत छोड़ कर जाता।

यह खेद की बात है कि भारत की राजधानी में उसके नाम की कोई सड़क भी नहीं है जबकि एक निर्णायक समय में दिल्ली का भाग्य उसके हाथों में था। भारतीय डाक और तार विभाग ने भी अभी तक नाहरसिंह के नाम की कोई डाक टिकट जारी नहीं की है।

(सी.आर.ए. कालेज, सोनीपत (हरियाणा)

●

दानवीर सेठ चौधरी छाजूराम

दानवीर सेठ चौधरी छाजूराम का जन्म सन् १८६१ ई० में अलखपुरा गांव, जिला भिवानी, तहसील बवानी खेड़ा में हुआ। आपके पिता जी का नाम चौधरी सालिगराम जी था। आपके पूर्वज सीकर के गांव गोठरा से आकर आबाद हुये। आपका जन्म लाम्बा गोत्र में हुआ था।

आपके पिता जी की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। केवल साधारण किसान थे। बालक छाजूराम का बचपन अलखपुरा के ग्रामीण वातावरण में ही बीता। बवानी खेड़ा के विद्यालय में ही आपकी प्रारम्भिक शिक्षा हुई। आप निरन्तर छात्रवृत्ति लेते रहे। मिडिल के पश्चात् आपको रिवाड़ी के हाईस्कूल में प्रवेश दिलाया गया। आपने दसवीं में अच्छे अंक प्राप्त किये। पारिवारिक परिस्थितियां ठीक न होने के कारण आप आगे शिक्षा नहीं ले सके।

आपका विवाह वचपन में ही डोहका ग्राम की बालिका से हुआ। विवाह के कुछ दिनों बाद ही प्रथम पत्नी की हैजे से मृत्यु हो गई। पूर्व पत्नी से कोई सन्तान नहीं थी। आपका दूसरा विवाह विलावल गांव, जिला भिवानी की कन्या लक्ष्मी देवी से हुआ, जिससे ६ सन्तानें हुईं।

लगभग २०-२२ वर्ष की आयु में आपका सम्पर्क भिवानी के आर्यसमाजी अभियन्ता (इन्जीनियर) श्री राम साहब शिवनाथराय जी से हुआ। वे आपकी कर्मठता और लगनशीलता से अत्यधिक प्रभावित हुये। अतः शिवनाथ जी आपको हजारीबाग, कलकत्ता ले गये। कुछ समय तक आपने राय साहब के बालकों को पढ़ाया। इसी दौरान आपका सम्पर्क वहां राजगढ़ के सेठ से हो गया। आप सेठ के बच्चों को भी पढ़ाते रहे।

दानवीर सेठ चोधरी छाजूराम
(१८६१–७ अप्रेल, १९४३ ईस्वी)

उन दिनों कलकत्ता के व्यापार पर मारवाड़ी सेठों का आधिपत्य था। कलकत्ता में अंग्रेजी भाषा का साम्राज्य था। मारवाड़ी सेठ अंग्रेजी से अनभिज्ञ थे। आप समय निकाल कर सेठों के पत्रादि के उत्तर दे दिया करते थे। उस समय आपको मुंशी जी के नाम से लोग जानने लगे। कुशाग्र बुद्धि आप थे ही। आपने पत्रों के उत्तर देते-देते व्यापार संबंधी बातों की जानकारी हासिल कर ली। वहां पर आप दलालों के साथ बाजार में जाते ही थे, और शीघ्र ही, कुशाग्र बुद्धि होने के कारण दलाली संबंधी सभी बातों को सीख लिया।

आपका ईश्वर में अटल विश्वास था। सेठ व्यापारियों में रहने के कारण व्यापारिक गुण भी आ गये थे। नम्रता कूट-कूट कर भरी थी। आपने पुरानी बोरियों का कार्य आरम्भ कर दिया। काम चल पड़ा और आपने नई बोरियों का क्रय-विक्रय आरम्भ कर दिया। अब आपकी कलकत्ता के बड़े दलालों में गणना होने लगी।

आपने कठोर परिश्रम से अपार धन कमाया। कलकत्ता में ही आपने कम्पनियों के शेयर खरीदे। कुछ समय बाद आपने कलकत्ता में पटसन (जूट) का कारोबार अपने हाथ में ले लिया। कुछ ही समय में आप 'जूट किंग' के नाम से विख्यात हो गये। आपका विश्वास था, ''जिस प्रभु ने मुझ पर इतनी कृपा की, उसके नाम पर जो दान करूं, वही कम है।''

कलकत्ता में आपने कई कम्पनियों के शेयर (हिस्से) खरीदे। आप लगभग २४ कम्पनियों के शेयर होल्डर भागीदार थे। आपको इन शेयरों में से प्रतिवर्ष लाभांश १६ लाख रुपये मिलता था। अब तक आपने करोड़ों रु० कमा लिया था, जिसको आपने समाज कल्याण में भी लगाना उचित समझा।

सेठ छाजूराम जी बाल्यकाल से ही आर्यसमाज के कार्यों से

प्रभावित थे। उन्होंने कलकत्ता में पचास हजार की धनराशि प्रदान की। हिसार के डी० ए० वी० स्कूल को भी आपने डेढ़ लाख रुपये दिया। डी० ए० वी० कालेज, लाहौर को २५ हजार रु० प्रदान किए। आप कहा करते थे– ''धन होने पर भी मैं आर्यसमाज के संसर्ग से ही बुरे व्यसनों से मुक्त रह सका हूं।''

दानवीर सेठ सर छाजूराम आर्यसमाज के लिये प्रेरणा स्रोत रहे। आप द्वारा दिया गया दान आज भारत की भिन्न-भिन्न संस्थाओं में फल-फूल रहा है। १९६१ में जाट हाईस्कूल, रोहतक को आपने ६१ हजार रु० दान में दिये। पांच लाख की लागत से भिवानी में 'लेडी हेली अस्पताल' बनवाया। जाट हाईस्कूल, हिसार को भी चार लाख रु० दानस्वरूप प्रदान किये। इस समय तक आप दानशीलता के कारण दूर-दूर तक विख्यात हो चुके थे। आपका दान देने का दायरा संकुचित नहीं था।

आपने अतुल धन राशि उदारता से दान में दी। प्रथम विश्व युद्ध में, आपने सरकार को 'युद्ध फण्ड में', १४०००० रु० दिये। विश्वकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर आपकी दानशीलता से अत्यधिक प्रभावित हुए। अखिल भारतवर्षीय जाट महासभा को १९२५ में आपने मुक्तहस्त दान दिया। विश्ववन्द्य बापू भी देशभक्तों की मदद के लिए आप से धन लिया करते थे।

आर्थिक परिस्थितियों के कारण आप अधिक शिक्षा ग्रहण न कर सके। शायद इसीलिए आपने अधिकाधिक शिक्षण संस्थाओं को दान दिया। आपने जगह-जगह छात्रावास, पुस्तकालय और धर्मशालाएं बनवाईं। आप आर्थिकरूप से पिछड़े और मेधावी छात्रों को छात्रवृतियां प्रदान करते थे। चौधरी ईश्वर सिंह डवास के शब्दों में, ''आपके दिल में मातृभूमि के लिए भी असीम व अटूट प्रेम था। जबकि कभी अवसर आया आपने देशभक्तों की बड़ी उदारता से

सहायता की। संक्षेपतः दानवीर सेठ छाजूराम ने जन–स्वास्थ्य के कार्यों, गरीबों, पतितों, बाढ़ पीड़ितों, अकाल पीड़ितों तथा शिक्षा के क्षेत्र में जीवनपर्यन्त ८२ लाख रुपये की राशि लगभग दान दी। इस महापुरुष ने केवल ८२ लाख ही नहीं अपितु करोड़ों रुपया मानवजाति के कल्याणार्थ दान दिया। वास्तव में दानवीर सेठ सर छाजूराम को क्षत्रियजाति का **भामाशाह** कह दिया जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी। आपके जीवन की सफलता का रहस्य सच्चाई, परिश्रम तथा नेकनियत है।"

आपको भारत में अंग्रेजी सरकार ने 'सर' की उपाधि दी थी। आपके जनकल्याण के कार्य हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे। चौधरी ईश्वर सिह डबास ने आपकी दानशीलता के विषय में लिखा है– "दानवीर, दयाशील, अपने समय का भामाशाह, कुबेर का अवतार, हरिश्चन्द्र और दधीचि ऋषि के समान देश का अनुपम परोपकारी, आर्यसंस्कृति का आधारस्तम्भ, निर्धन छात्रों का धनवान पिता, हरियाणा का कोहिनूर हीरा ७ अप्रैल, १९४३ को लोक लीला संवरण करके परमपिता परमात्मा को प्यारा हो गया। अपनी बौद्धिक प्रतिभा, दान, चरित्र, दूरदर्शिता से व्यापारिक संस्थान में एक केन्द्रीय बिन्दु बने और जन-जन का कल्याण किया, इसलिए आप इन्सान नहीं, देवता थे।"
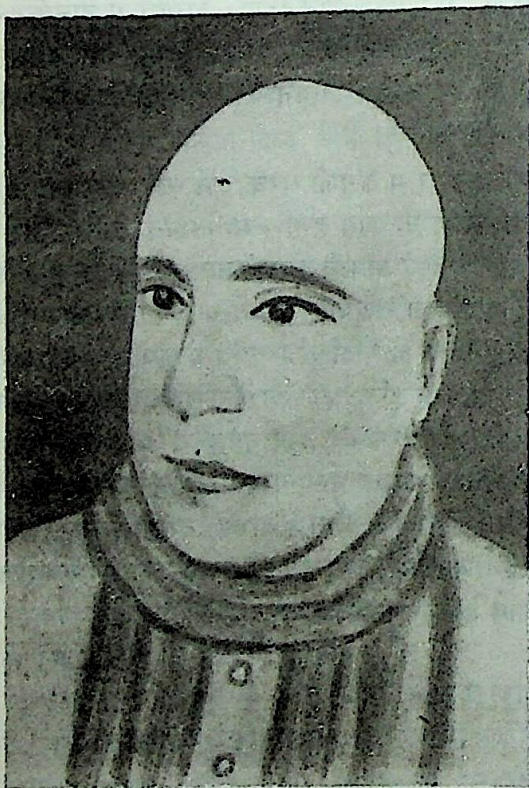
लौह पुरुष स्वतंत्रानन्द सरस्वती
(सम्वत् १९३४–२०११ विक्रमी)

लौहपुरुष
स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती

स्वतंत्र प्रकृति होने के कारण स्वामी जी का नाम स्वतंत्रानन्द पड़ गया था। हैदराबाद आर्यसत्याग्रह आंदोलन के अवसर पर स्वामी जी ने इस तरह से केन्द्र का संचालन किया और प्रचंड अभियान चलाया कि आर्यजगत ने स्वामी जी को 'फील्ड मार्शल' की उपाधि से विभूषित कर दिया। स्वामी जी की गणना आर्य संन्यासियों में मूर्धन्य स्थान पर की जाती है। आप प्रभावशाली विद्वान् संन्यासी थे।

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी का जन्म सन् १८७७ में पंजाब प्रांत के लुधियाना जिले के 'मोही' नामक ग्राम में (जाट सिख परिवार) हुआ। उनका बचपन का नाम केहरसिंह था। उनके पिता सरदार भगवानसिंह मेजर सेना में सूबेदार थे। सरदार केहरसिंह ने जालन्धर छावनी के विद्यालय में केवल मिडिल तक शिक्षा पाई। अल्पायु में ही उनका विवाह कर दिया गया। पत्नी का देहान्त शीघ्र ही हो गया। अब वे बन्धनमुक्त थे।

पं० बिशनदास जी के संपर्क में रह कर उन्हें वैराग्य हो गया। इस समय उनकी आयु केवल पन्द्रह वर्ष थी। उन्होंने गृहत्याग कर दिया और देशाटन के लिए निकल पड़े। स्वामी पूर्णानन्द जी से आपने संन्यास की दीक्षा ली और स्वामी 'प्राणपुरी' नाम धारण किया। दीक्षा के समय उनकी वय केवल २३ वर्ष थी। उदासी सन्त पं० स्वरूपदास से उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया। स्वतन्त्र बाल्टी हाथ में थामी और निकल पड़े देशाटन को। लोगों ने 'बाल्टी वाले बाबा' कहना आरम्भ कर दिया।

बाबा की ज्ञान-पिपासा शांत नहीं हुई। कहा जाता है कि उन्होंने साधुओं का संग त्याग दिया और काशी चले गये। यहां उन्होंने कुछ समय तक संस्कृत का गहन अध्ययन किया। काशी से बम्बई के बन खण्ड में चले गये और 'सिद्ध बाबा' के नाम से जाने गये। यहां से पुनः पंजाब पधारे और पं० विशनदास जी से भेंट की। यहीं से उनका जीवन बदल गया। उन्होंने आर्ष साहित्य पढ़ा और आर्यसमाज में विधिवत् सम्मिलित हो गये।

स्वामी जी ने भटिण्डा के निकट रामा मण्डी में रहकर केवल ६ मास तक आर्ष साहित्य का अध्ययन किया था। इसके पश्चात् उन्होंने लुधियाना को अपना केन्द्र बनाया। यहां उन्होंने वेद प्रचारिणी सभा तथा पाठशाला का कार्यभार भी सम्भाला। आर्य बन कर स्वामी जी ने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की प्रगति में विशेष उल्लेखनीय कार्य किया। आपने आर्यजगत के लिए अनेक पुस्तकें लिखीं--- सिखगुरु और यज्ञोपवीत, वैदिक सिद्धान्त तथा गुरु-ग्रन्थ नामक प्रसिद्ध पुस्तकें हैं।

स्वामी जी आर्य सत्याग्रह, हैदाराबाद के संचालक रहे। निजाम हैदराबाद ने आर्यसमाज के प्रचार तथा सत्यार्थप्रकाश पर प्रतिबन्ध लगा दिया। स्वामी जी ने इस प्रतिबन्ध को समाप्त करने के लिए १९३८-३९ में आर्यसमाज की ओर से आन्दोलन किया। काफी संघर्ष के बाद आन्दोलन के सम्मुख निजाम को प्रतिबन्ध हटाना पड़ा। इस आन्दोलन की सफलता के पश्चात् ही आप आर्यजगत में 'फील्ड-मार्शल, कहलाए।

हैदराबाद के निजाम की तरह लोहारू के नवाब ने भी आर्यसमाज के प्रचार पर प्रतिबन्ध लगा दिया। स्वामी जी ने वहां भी आन्दोलन चलाया। लोहारू के नवाब के गुण्ड़ों ने स्वामी जी के सिर पर लाठियों के वार और कुल्हाड़े से प्रहार करके लहूलुहान कर

दिया। शूर शिरोमणि घायल होकर भी अडिग खड़ा रहा। स्वामी

जी विजयी हुए। नवाब का प्रतिबन्ध हटाना पड़ा। स्वामी जी ने हरियाणावासियों को भी आजादी के आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया और अंग्रेजों का साथ न देने के लिए तैयार किया। यहां भी वे अंग्रेजों के कोपभाजन बने। इस संदर्भ में प्रोफेसर राजेन्द्र 'जिज्ञासु' जी ने लिखा है, ".... हमारे स्वाधीनता संग्राम में, सेना में विद्रोह फैलाने के आरोप में वायसराय के आदेश से बन्दी बनाए जाने वाले एकमेव संन्यासी महात्मा थे। वे ऐसे अद्वितीय संन्यासी महात्मा थे, जिन पर 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में पंजाब के गवर्नर की हत्या का भी दोषारोपण करके अमानुषिक यातनाएं दी गईं।"

सन् १९०१ में स्वामी जी ने जावा, सुमात्रा, मलाया, बोर्नियां, सिंगापुर तथ फिलीपिन्स में आर्यसमाज का प्रचार किया। १९०४ में आप भारत लौटे। १९१३ में वेद–प्रचार के लिए आपने मारिशस की यात्रा की। १९२० में बर्मा में भी वेद–प्रचार कर भारत लौटे। आपने अफ्रीका आदि देशों में भी महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा वेदों की वाणी का प्रचार किया और छः मास बाद भारत लौटे। १९४९ में पुनः वेद–प्रचारार्थ मारीशॅस तथा पूर्वीअफ्रीका गये।

सन्१९२५ में स्वामी जी को उपदेशक महाविद्यालय, लाहौर का आचार्य नियुक्त किया गया। १९२९ से १९४१ तक स्वामी जी सार्वदेशिक सभा के कार्यकारी प्रधान तथा उपप्रधान के पदों पर भी रहे। १९३८ में स्वामी जी ने दीनानगर दयानन्द मठ की स्थापना की। रोहतक में आपके द्वारा स्थापित दयानन्द मठ आर्यजनों का विशाल आश्रम–स्थल बना हुआ है। स्वामी जी का गो-रक्षा आन्दोलन की तैयारी करते समय स्वास्थ्य खराब होने पर स्वर्गवास हुआ। आपको इतिहास में आर्यसमाज का लौहपुरुष के नाम से स्मरण किया जाता है। स्वामी जी का संदेश है– "अब भारत

स्वतंत्र हैं, स्वतन्त्रता प्राप्त भारत में ठगी का व्यापार शोभा नहीं

देता। अब देश में सत्य का व्यवहार होना चाहिए। जैसे वैश्यों को सत्य का व्यवहार करना चाहिए वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सब को इसी मार्ग पर चलना चाहिए।"

●

महान क्रान्तिकारी सरदार अजीतसिंह

सरदार अर्जुनसिंह जी के पुत्र और शहीद भगतसिंह के चाचा सरदार अजीतसिंह का जन्म ३ फरवरी, १८८१ को जालन्धर जिले के खटकरकलां गांव में हुआ था। बाद में इनके पिता बंगा गांव में आकर बस गए। सरदार अर्जुनसिंह जी का पंजाब आर्यसमाज के इतिहास में यशस्वी नाम उल्लेखनीय है। कहा जाता है कि आप बहुत कुशल शिकारी थे। आर्यसमाज से प्रभावित होकर ही आपने मांस-मदिरा का त्याग कर दिया था। आपके तीन पुत्र हुए। किशनसिंह, अजीतसिंह और सुवर्णसिंह।

भारत को स्वाधीन कराने के लिए सरदार अजीतसिंह ने विदेशों में दर-दर की ठोकरें खाईं। अंग्रेज हकूमत उनसे कितना खौफ खाती थी, इस बात का अन्दाजा ५ मई, १९०७ के उस तार से लगाया जा सकता है, जो भारत के वायसराय को पंजाब के गवर्नर इब्टसन ने भेजा था, ''पंजाब में बगावत होने वाली है और इस बगावत का नेतृत्व अजीतसिंह और उसके साथी करेंगे।''

अजीतसिंह जी के जीवन से ही भगतसिंह प्रेरित हुआ। इस प्रकार सरदार अर्जुनसिंह का घर क्रान्तिकारियों का घर कहलाया। घर की महिलाओं ने सदैव चिन्ताग्रस्त जीवन जीया, जब सरदार अजीत सिंह भारी कष्ट उठाकर स्वदेश लौटे तो अपनी पत्नी हरनामकौर के चरण स्पर्श करके भाव विह्वल होकर बोले, ''सरदारनी मैं तुझे सुख न दे सका। भारतमाता की सेवा में रहने के कारण तुम्हारी ओर ध्यान न दे सका। इस अपराध को क्षमा कर देना।''

अंग्रेज सरकार ने १४ अगस्त १९४७ की मध्यरात्रि को आजादी की घोषणा की। क्रान्तिकारी की साध पूरी हुई। परन्तु

घोषणा सुनने पर ज्वर में बड़बड़ाये "न जवाहरलाल देख रहा है और न जिन्ना। दोनों तरफ खून की नदियां बह जायेंगी, मैं भला

भारतमाता के टुकड़े अपनी आंखों से कैसे देख सकता हूं? मैं तो चला जाऊंगा। मेरे जीवन का ध्येय पूरा हो गया है, मैंने अपनी आंखों से देख लिया है किन्तु देश का विभाजन यह आंखें नहीं देख सकती। अतः आज मैं जा रहा हूं। मेरा अन्तिम संदेश लिखकर विश्वभर में मित्रों को पहुंचा देना।" और वे उसी दिन खंडित भारत देख कर संसार से चले गए।

दीनबन्धु सर चौधरी छोटूराम

कुंवर नटवरसिंह

आजकल प्रत्येक व्यक्ति साहस, चरित्र, दया एवं स्पष्टता की बात कहता है, ऐसे व्यक्तियों का सर्वथा अभाव है। बीसवीं सदी में हरियाणा के चौधरी छोटूराम के चरित्र में उपरोक्त सभी तथ्यों का अनोखा समावेश था। उनकी प्रेरणा का स्रोत कभी सूखा नहीं और न ही उनकी धर्मनिरपेक्षता के नियम बदले। उन्हें निर्धनों की उन्नति के लिए किये गये कार्यों में कभी हिचकिचाहट नहीं हुई। वे सदा अपने धर्म तथा ईश्वर पर विश्वास रखते थे। वे सदैव प्रसिद्ध शायर इकबाल की निम्न पंक्तियों को दुहराते थे:—

खुदी को कर बुलन्द इतना।
कि हर तदवीर से पहले।
खुदा बन्दे से खुद पूछे
बता तेरी रज़ा क्या है।।

महान रूसी कवि और उपन्यासकार बोरिस पास्तरनक ने कहीं लिखा है कि जो स्वयं महान् है उसे किसी प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं होती है। इनकी ख्याति किसी उच्चकुल में पैदा होने से नहीं वरन् विषम परिस्थितियों में श्रेष्ठ कार्य करने के कारण मिली।

चौधरी छोटूराम का जन्म २४ नवम्बर सन्१८८१ में रोहतक जिले के गढ़ी सांपला में हुआ था। इनके पिता चौ० सुखीराम ओहलान जाट गोत्र के थे, वे निर्धन कृषक थे तथा उनकी पत्नी सरलादेवी अशिक्षित थीं। तीसरे बच्चे छोटूराम के जन्म से परिवार में कोई अन्तर नहीं आया। इस बच्चे का नाम रामरक्षपाल रखा गया, परन्तु सभी इसे छोटू कहते थे, जो अन्त तक छोटूराम ही रहा।
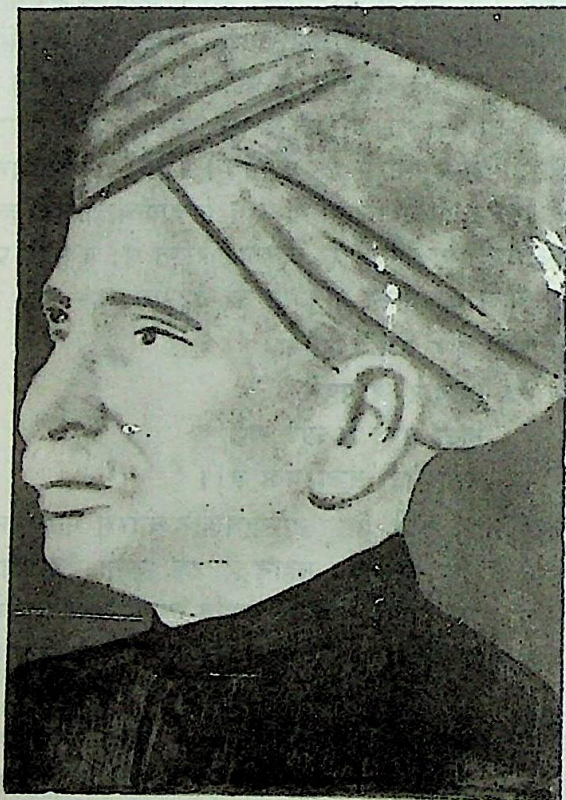
दीनबन्धु सर चौधरी छोटूराम
(१८८१–१९४५ ईस्वी)

विशेषरूप से जाट तथा कृषक सामान्यतः गांव साहूकार की दया पर जीवित थे। उस समय की परिस्थिति से चौ० सुखीराम भी बचे नहीं थे। वे कर्जदार थे। यहां तक कि वे अपने छोटे पुत्र को शिक्षा भी नहीं दिला सकते थे। छोटूराम स्कूल में विशेषरूप से संस्कृत और अंग्रेजी में बहुत होशियार थे। वे पढ़ने के लिए कालेज तथा विश्वविद्यालय जाना चाहते थे। परन्तु कैसे? पढ़ने के लिए रुपया कहां से आता? इनके पिता गांव के बनिये के पास सहायता और सुझाव के लिए पहुंचे। बनिये ने यह उत्तर दिया कि जाट के बच्चे के लिए प्रारम्भिक शिक्षा पर्याप्त है तथा छोटूराम को पटवारी या पुलिस हैडकांस्टेबल की नौकरी कर लेनी चाहिए।

नवयुवक छोटूराम की योजना कुछ और ही थी। उन्होंने अपने चाचा चौ० राजेराम से चालीस रुपये उधार लिये तथा दिल्ली जाकर सेन्ट स्टीफन कालेज में दाखिला ले लिया। इसी समय वे आर्यसमाज की ओर आकर्षित हुए। उन्होंने अपने प्रवेश पत्र में अपना धर्म 'वैदिक' लिखा। उप-प्रधानाचार्य श्री रुद्र ने इनसे 'वैदिक' के स्थान पर 'हिन्दू' लिखने को कहा। छोटूराम अपनी बात पर अडिग रहे। उन्होंने कहा कि हमारे धर्मग्रन्थों में 'हिन्दू' शब्द का कहीं उल्लेख नहीं मिलता और न ही हिन्दुवाद जैसी कोई चीज़ है। छोटूराम ने सन् १९०५ में बी.ए. की परीक्षा संस्कृत विषय में विशेषयोग्यता में उत्तीर्ण की।

उन्होंने अपने विद्यार्थी काल में 'गीता' का अध्ययन किया, जिसका इन पर गहरा प्रभाव पड़ा। इन्होंने बाद में लिखा है— "अपने पथ पर दृढ़ता से डटा रहूंगा जिसे मैं कर्तव्य मानता हूं। मैं मुख्यतया उस दर्शन पर दृढ़ हूं जिसकी व्याख्या ५००० वर्ष से अधिक पहले प्रसिद्ध करुक्षेत्र के मैदान में की गई थीं।" उनकी चारित्रिक विशेषता ही गीता की व्याख्या थी। उन्होंने कर्म करने को

कहा, अहिंसात्मक कार्य करना ही जरूरी नहीं। (जब भारत ने बौद्ध और जैन मत को त्याग दिया था, यह अहिंसा का धर्म के रूप में अर्म्वीकृति थी।) इसी ने इन्हें आकर्षित किया था। ''मैं यीशु के उपदेशों में विश्वास नहीं करता कि यदि तुम्हारे बाँयें गाल पर किसी ने थप्पड़ मारा है तो तुम अपना दायां गाल भी पीटने के लिए सामने कर दो।''

मैं मोमेस (माओ) की शिक्षाओं में विश्वास करता हूं जिसके अनुसार इंट का जवाब पत्थर से देना चाहिए अर्थात् जैसे को तैसा उत्तर देना चाहिए। ''यदि तुम एक पत्थर फेंकोगे तो मैं तुम पर भारी पत्थर दे मारूंगा। कृपया घाव हो तो चिल्लायें नहीं, मैं वादा करता हूं कि मैं ऐसा नहीं करुंगा।'' उनका विश्वास गिरजे घर की घण्टी की भांति स्पष्ट था। वे जानते थे कि यह राजनीतिक आधारभूत प्रश्नों पर कहां खड़े हैं? उन्होंने अनुभव किया कि जिन लोगों को अधिक मिलना चाहिए उन्हें कम मिलता है और जो कम प्राप्त करने के योग्य हैं वे अधिक प्राप्त करते हैं। उन्होंने इसे समाप्त करने की प्रतिज्ञा की और उन्हें इसमें पर्याप्त सीमा तक सफलता मिली।

वकालत करने से पूर्व इन्होंने कुछ समय के लिए कालाकांकर के ताल्लुकेदार श्री रामपाल सिंह (श्री दिनेश सिंह, एम० पी० के बाबा) के यहां निजी सचिव रहे। इन्होंने भारत के प्रमुख जाट रियासत भरतपुर में भी नौकरी की तलाश की परन्तु उन्हें कोई अनुकूल कार्य नहीं मिला।

छोटूराम ने इसी समय दीनबन्धु सी० एफ० एण्ड्रयूज (१८७०-१९४०) के लिए 'भारतीय ग्राम्य जीवन में उन्नति' पर एक लेख लिखा। तब वे केवल २६ वर्ष के थे, परन्तु उनका लेख किसी अनुभवी व्यक्ति जैसा था। वे गांवों की वास्तविक स्थिति से

परिचित थे। उनका संबंध शैक्षणिक न होकर यथार्थ था। वे केवल सैद्धान्तिक ही नहीं वरन् यथार्थवादी थे। आपने अपने लेख में ग्रामीण जीवन के सभी पक्षों सूदखोरों, अज्ञानता, शोषण, स्त्रियों की दशा एवं संयुक्त परिवार को सम्मिलित किया था।

आपने पंचायतों को शक्तिशाली बनाने का प्रस्ताव किया था। वे ग्राम्य–जीवन की लगभग असहनीय दशा से पूर्णतः परिचित थे।

कुछ दिन आगरा रुकने के पश्चात् सन् १९२२ में रोहतक चले गये। एक वर्ष के बाद वकालत शुरू कर दी। जिन्होंने आने वाले वर्षों में पंजाब के मामले में कुछ सुनिश्चित भूमिका निभायी थी। हालांकि यह कोई कम महत्वपूर्ण कार्य नहीं था। प्रथम विश्वयुद्ध के अवसर पर चौ० छोटूराम रोहतक कांग्रेस के अध्यक्ष बने तथा 'जाट गजट' का संपादन किया। इसके अतिरिक्त आपने वकीलों के लिए आचार–संहिता तैयार की। जिसके कारण वे अपने साथ वकीलों के प्रिय न बन सके, परन्तु वे इससे घबराये नहीं। वे साफ–सुथरे संघर्ष के समर्थक थे। गांधी जी की तरह आपने भी सेना की भर्ती में सहायता की। जब गांधी जी के प्रभाव की धाक जम ली थी, उस समय सन् १९२० में आपने कांग्रेस से अपना संबंध विच्छेद कर लिया क्योंकि वे गांधी जी के असहयोग आन्दोलन में पूर्णरूप से सहमत नहीं थे। आपने कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया। इस तरह आपने जानबूझकर राष्ट्रीय राजनीति की मुख्य धारा से अपने को अलग कर लिया और अपना समस्त ध्यान पंजाब पर केन्द्रित कर दिया।

उत्तरी भारत के मामलों में पंजाब की क्षेत्रीय राजनीति का स्थान अति महत्वपूर्ण हो गया। लगभग एक चौथाई शताब्दी तक चौ० छोटूराम पंजाब के जुझारू व्यक्तियों में से थे। सन् १९२७ से १९४५ तक निःसन्देह वे पंजाब की राजनीति में अत्यधिक

प्रभावशाली, योग्य एवं शक्तिशाली व्यक्ति रहे थे।

सन् १९२३ में चौधरी छोटूराम ने मियां सर फजल ए. हुसैन के साथ मिलकर यूनियनिस्ट पार्टी का गठन किया। आपने इस दल को सही निर्देश और सफल नेतृत्व प्रदान किया, यद्यपि इस दल का जीवन संक्षिप्त रहा परन्तु उपलब्धियां किसी के लिए ईर्ष्या का विषय है।

चौधरी छोटूराम कृषि, उद्योग, शिक्षा, राजस्व विभाग आदि के मंत्रित्वकाल के समय श्रेष्ठ तथा प्रगतिशील अधिनियम बनाये गये, जिससे पिछड़े लोगों एवं कृषकों को काफी सहायता मिली। चौधरी छोटूराम ने हरिजनों को भूमि प्रदान की। आपने शहरी व्यापारियों की कुछ वस्तुओं पर हल्का विक्रीकर लगाया। इसके कारण उन्हें व्यापारीवर्ग का कोपभाजन बनाना पड़ा परन्तु चौधरी छोटूराम अविचलित रहे। इनके पास अनेक कार्यक्रम और उन्हें लागू करने की इच्छायें थीं। उन्हें धनिकों द्वारा बदनाम किया गया। मुस्लिम समर्थक तथा शहरी नागरिकों का दुश्मन कहा गया। उन्हें कुछ समय के लिए षड्यंत्रों और ईर्ष्यालुओं के कारण विधान सभा के बाहर रहना पड़ा परन्तु शीघ्र ही फिर चुन लिये गए।

इन्हें पंजाब से बाहर निकालने के भरसक प्रयत्न किए गए। चौ० छोटूराम के समक्ष कश्मीर का प्रधानमंत्री, भरतपुर का दीवान, वायसराय की कार्यकारिणी का सदस्य बनने के आकर्षक प्रस्ताव विकल्प में रखे गये। आपने इन सभी प्रस्तावों को अस्वीकृत कर दिया। जब आप मंत्री नहीं थे, उस समय अपना समस्त समय और शक्ति पंजाब का दौरा करने, दल को पुनर्जीवित करने और आधार मजबूत करने में लगाया। आपकी ख्याति और आदर पंजाब में ही नहीं वरन् राजस्थान, दिल्ली तथा पश्चिमी उत्तरप्रदेश में भी था।

सन् १९२७ में चुनावों के पश्चात् पंजाब में युनियनिस्ट पार्टी

ने सरकार बनाई। चौधरी छोटूराम राजस्वमंत्री बनाये गये। वे पूरी शक्ति से चुनाव के समय किये वायदों को पूरा करने में जुट गए, गवर्नर ने सर हयात खां द्वारा चौधरी साहब को धीमी गति से कार्य करने का सुझाव दिया। राजस्व मंत्री ने उत्तर दिया कि पंजाब सरकार की नीतियां, गवर्नर, प्रतिक्रियावादियों, निहित स्वार्थियों को और महाजनों को प्रसन्न करने मे लिए नहीं है। जो लोग उन पर मुस्लिम समर्थक होने का आरोप लगाते थे उनसे आपने कहा– "मैं पूरी तरह राष्ट्रवादी हूं। कुछ स्वार्थी संस्थायें मुझे सम्प्रदायवादी सिद्ध करने की कोशिश में हैं लेकिन मैं उन्हें बता देना चाहता हूं कि साम्प्रदायिकता का लबादा (चोगा) मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं....। यदि महात्मा गांधी मौलाना आजाद में पूर्ण विश्वास रखकर सांप्रदायिक नहीं बने और पंडित नेहरू जी आसफ अली का साथ देने के बाद भी राष्ट्रवादी बने रहे, तो मैं पंजाब की भलाई के लिए सर सिकन्दर हयात खां का साथी होकर सच्चा राष्ट्रवादी क्यों नहीं हो सकता?"

सन् १९२९ में हुए कांग्रेस अधिवेशन के समय जवाहर लाल नेहरू के अध्यक्षीय भाषण विशेषतया "राजनीति की जोड़ तोड़ से अर्थशास्त्र को दिवालिया बना दिया है।"– वाक्यांश का हवाला चौधरी छोटूराम अक्सर दिया करते थे। यह कथन इनकी राजनीति का आधार था। वास्तव में सामान्य आर्थिक हित का प्रतिरोधी बल अन्ततः साम्प्रदायिक बीमारी का प्रभावी इलाज सिद्ध होगा। इसप्रकार आपने विधान सभा में और बाहर रहकर अपनी प्रगतिशील दृष्टि उचित कार्यक्रमों के द्वारा पंजाब के कृषक समुदाय तथा सम्पूर्ण समाज के निर्धनों की असीम कृतज्ञता और प्रेम अर्जित किया। आपका कहना था कि किसानों को अब अधिक दिनों तक

दबाया या उपेक्षित नहीं किया जा सकता है और न ही उनके हितों को अनदेखा किया जा सकता है।

चौधरी छोटूराम धर्मनिरपेक्ष देशभक्त थे। वे पंजाब के बहुमत की नब्ज अच्छी तरह पहचानते थे। इस तरह वे राष्ट्रीय स्तर के एकमात्र नेता थे, आपने स्पष्ट रूप से श्री एम० ए० जिन्ना की धोखेबाजी का पर्दाफाश किया। यह विशेष रूप से सन् १९३६ में सर फजली ए हुसेन की मृत्यु के बाद की कोई कम सफलता नहीं थी। फजली ए हुसैन की पार्टी के नेता प्रधानमंत्री सर सिकन्दर हयात नहीं बने थे। इसतरह चौधरी साहब न केवल जिन्ना से ही निबटे बल्कि उन्होंने सर सिकन्दर हयात को भी विचलित न होने देना भी निश्चित कर दिया। जब तक चौधरी साहब जीवित रहे श्री जिन्ना और उनकी मुस्लिम लीग पंजाब में अपने पांव नहीं जमा सकी। जिन्ना चौधरी साहब के कार्यकलापों की जनजातीय राजनीति (ट्राइबल पॉलिटिक्स) कहा करते थे। यूनियनिस्ट पार्टी के ने आपके सम्मान में विशाल सभा की तथा आपने 'रहबर ए आजम' की उपाधि प्रदान की। जब महात्मा गांधी को एक लम्बे पत्र में श्री जिन्ना की सांप्रदायिक राजनीति का पर्दाफाश करते हुए लिखा कि जिन्ना साहब साम्प्रदायिक हैं, निर्माणकर्ता नहीं, विध्वंसक हैं, रचना करने वाले नहीं, नष्ट करने वाले हैं और पृथकतावादी हैं, एकतावादी नहीं।

चौधरी साहब शारीरिक रूप से स्वस्थ नहीं थे। फिर भी आप अपने स्वास्थ्य की परवाह नहीं करते थे। युद्ध के समय कार्य की अधिकता के कारण अत्यधिक परिश्रम किया। इसके अतिरिक्त पच्चीस वर्ष तक कभी अवकाश नहीं लिया और न ही विश्राम किया। सन् १९४४ नवम्बर में पहला दिल का दौरा पड़ा तब भी आपने कार्य करने की गति को कम नहीं किया।

आपने अनेक आवश्यक कार्यों को जारी रखा। भाखड़ा नांगल बांध योजना को अन्तिम रूप देने के लिए विलासपुर के राजा के साथ समझौता पर हस्ताक्षर करना भी था, जिनकी सीमा में यह बांध बनना था।

आपके स्वास्थ्य में सुधार की कुछ आशा बन रही थी, तभी अचानक दशा बिगड़ने लगी और आपका **८ जनवरी १९४५** को स्वर्गवास हो गया। इनकी मृत्यु के समय सर खिजर हयात खां तिवाना इनके निकट थे। चौधरी साहब के निधन के बाद एक वर्ष में ही पंजाब की राजनीति में पूर्ण परिवर्तन हो गया। इस प्रदेश में जिन्ना का प्रवेश हो गया।

श्री मदनलाल गोपाल ने चौ० छोटूराम की जीवनी में यह उल्लेख किया– "यदि चौधरी छोटूराम तीन वर्ष और जीवित रहे होते, तो शायद भारत का विभाजन नहीं होता।"

इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि चौधरी साहब का दल मार्च १९४६ के विधान सभा के चुनाव में अच्छी विजय प्राप्त करता। वे जिन्ना को हरा सकते थे। सम्भवतः चौधरी साहब भारत में ब्रिटिश शासन के अन्तिम महीनों में हुए निर्दयी हत्याकांड को रोक सकते थे। चौधरी साहब के निधन से पंजाब तथा देश ने एक विशिष्ट प्रशासन (वे जिज्ञासु तथा आधुनिक सरकार चलाने की कला में निपुण थे), धर्मनिरपेक्ष नेता, निर्भीक तथा कुशल विधायक को असमय खो दिया। चौधरी की मृत्यु से जरूरतमंद और निर्धनों ने अपना मित्र खो दिया। आपका अपना समुदाय अपने प्रिय गुरु पथप्रदर्शक से वंचित रह गया। वे प्रायः हितोपदेश के निम्न श्लोक का उद्धरण देते थे–

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।।

त्यागमूर्ति स्वामी केशवानन्द

स्वामी केशवानन्द के बचपन का नाम 'वीरमा' था, जो ब्रह्मा का अपभ्रंश है। उनके पिता का नाम ठाकरसी और माता का नाम सारां था। माता, पिता और उनके बचपन के नाम के संबंध में निम्नलिखित दोहा प्रचलित है–

'सारां' जायो 'बीरमा' 'ठाकुरसी' रो अंस।
सन्त केशवानन्द बण, ऊजल करग्यों बंस।।

स्वामी जी का जन्म सन् १८८३ में राजस्थान के सीकर जिले के मंगलूणा नामक ग्राम में हुआ था। आप माता-पिता की इकलौती सन्तान थे। पिता साधारण किसान थे। उन्होंने गांव को त्याग दिया था और रतनगढ़ में आ बसे। यहां ऊंट गाड़ी चलाने लगे। यहीं उनका देहान्त हो गया। इस समय बालक बीरमा की आयु ढाई वर्ष की थी। एक भीषण अकाल में मां भी चल बसी। बालक बीरमा ने गाय चराना आरम्भ कर दिया। पन्द्रह वर्ष की आयु तक स्वामी जी ने अनेक कठिनाईयों का सामना किया। वें नंगेबदन, गर्मी-सर्दी में पशु चराया करते थे। उस समय की गरीब किसान जनता का वर्णन स्वामी जी ने इस प्रकार किया है– ''किसी बड़े या बूढ़े सम्पन्न चौधरी के घर खद्दर की एक अंगरखी तिवारे में बाहर खूंटी पर सदैंव लटकी रहती। यदि किसी को विवाह या मुकलावा जैसे विशेष अवसर पर जाना होता तो उसे पहनकर चला जाता और आते ही उसी खूंटी पर उसे सजा दिया जाता।''

बेसहारा बीरमा अब तक गाय चराते-चराते साहसी और दृढ़ निश्चय वाला बन गया था। उसने गांव त्याग दिया और फिरोजपुर के अनाथालय में जा पहुंचा। यहां लगभग वह डेढ़ वर्ष रहा। अपने

बाल्यकाल की जिंदगी का वर्णन करते हुए स्वामी जी ने कहा है–

"सिरहाना, गदेला, रजाई आदि रूई का कोई सामान उस जमाने में गांव में नहीं होता था, ऊन का कम्बल तिहरी और इकहरे कर्मालये जरूर होते थे, जो बैठने पर सायं-प्रातः ओढ़ लिये जाते थे और काम करने पर एक धोती ही होती थी, तब फिर जंगल में फिरने वाले इन बाल-गोपालों को कौन कपड़े, धोती और अंगरखी पहनाता।"

दो-ढ़ाई वर्षों तक बीरमा इधर-उधर भटकते रहे और एक साधु के दर्शन कर उनके आश्रम में आ गए। साधु महाराज ने भोजन कराया और परामर्श दिया, "अमृतसर जाकर संस्कृत पढ़ो। इसके लिए आवश्यक है कि तुम साधु हो जाओ। क्योंकि जाट को न तो कोई संस्कृत पढ़ायेगा और न खाने-पीने को देगा। साधु बन जाने पर,. ये सारी परेशानियां दूर हो जायेंगी।" सन् १९०४ में आपने उदासी साधु कुशलदास जी से, संस्कृत सीखने की लालसा से, उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। सन् १९०५-६ में आप इलाहाबाद में स्वामी हीरानन्द अवधूत की झोंपड़ी में रहने लगे। यहां आपने हिन्दू धर्मग्रन्थों का अध्ययन किया। आपको स्वामी जी ने यहां 'केशवानन्द' नाम दिया। अब आप देशाटन के लिए चल पड़े थे। १९०८ में स्वामी जी गुरुगद्दी के उत्तराधिकारी बने।

स्वामी केशवानन्द जी ने आश्रम में 'वेदान्त पुष्प वाटिका' नाम से एक पुस्तकालय की स्थापना कराई। सन् १९१२ में आपने फाजिल्का में संस्कृत पाठशाला की स्थापना की। आपने अबोहर में 'चलता पुस्तकालय' स्थापित करवाया ताकि उसका लाभ देहात में रहने वाले किसान भी उठा सकें। पुस्तकालय की स्थापना के समय आपने कहा था– "मेरे हृदय में सदा से यह बात रही है कि किसान लोगों में जागृति फैले ताकि वे अपने दुःखों के निवारण के लिएं स्वयं प्रयत्नशील हो सकें।"

स्वामी जी ने सन् १९३२ में जाट विद्यालय , संगरिया में बनवाया। यही विद्यालय उन्हीं के नेतृत्व में महाविद्यालय बना। संगरिया ट्रस्ट की पत्रिका के अनुसार, ".... संगरिया के संचालन का दायित्व संभाला और जीवन के शेष चालीस वर्षों में उसे मिडिल स्तर से महाविद्यालय शिक्षा तक पहुंचाया, जिसमें कृषि, कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, शिक्षा महाविद्यालय, शिक्षक प्रशिक्षण शाला, कन्या विद्यालय, संग्रहालय पुस्तकालय, औषधालय व ३०० एकड़ कृषि फार्म विकसित कर विशाल संस्था का रूप देकर ग्रामोत्थान विद्यापीठ बना दिया। आज ग्रामोत्थान विद्यापीठ उत्तर भारत की एक ऐसी प्रगतिशील संस्था है, जो शिक्षा प्रचार-प्रसार के साथ-साथ समाज—सुधार, महिला कल्याण तथा जन-जागृति की अग्रदूत बन कर जन आकांक्षाओं के अनुरूप जन-सेवा में संलग्न है।

ग्रामोत्थान विद्यापीठ के अतिरिक्त कर्मयोगी स्वामी केशवानन्द जी ने बीकानेर के रेगिस्तानी गांवों में सन् १९४४ से १९५६ तक २८७ पाठशालाएं खुलवाई, जगह-जगह पुस्तकालय तथा वाचनालय खोले और चलते-फिरते पुस्तकालय संचालित किए। स्वामी जी के सद्प्रयासों तथा जन-सहयोग से मिडिल स्कूल छानी बड़ी (भादरा), हिन्दी साहित्य सदन, मंडी डबवाली, विद्यार्थी भवन, रतनगढ़, विद्यार्थी आश्रम राजगढ़, किसान छात्रावास बीकानेर तथा कस्तूरबा महिला विद्यापीठ महाजन की स्थापना की गई।"

कैप्टन भगवानसिंह जी के अनुसार "कथन और कर्म की एकता उनकी शक्ति थी और जनता की सेवा उनकी साधना थी।" १९४४ में 'त्रैवार्षिक शिक्षा प्रसार योजना' प्रारम्भ कराई। १९५० में महिला आश्रम और प्रेस की स्थापना कराई। सन् १९५२ से

१९६४ तक स्वामी जी राज्य सभा के सदस्य रहे। आप नागरी प्रचारिणी सभा काशी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के आजीवन सदस्य थे। हिन्दी के प्रचार हेतु किए गए उत्कृष्ट कार्यों के लिए आपको राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा ने 'राष्ट्रभाषा गौरव' की उपाधि से विभूषित किया था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने भी आपको 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से सम्मानित किया। स्वामी जी ने अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन करवाया। हिन्दी में 'सिख इतिहास', 'गुरुमत दर्शन', 'मरुभूमि सेवा कार्य', 'कला के पद्म' तथा महापुरुषों की जीवनियां प्रमुख हैं। 'सिख इतिहास' का प्रकाशन करवाने पर स्वर्ण मन्दिर में १७ अक्टूबर, १९५६ को आपको सम्मानित भी किया गया था।

स्वामी केशवानन्द स्वयं को असहयोग आन्दोलन से अलग न रख सके। अंग्रेजी साम्राज्य विरोधी प्रचार में आपको १९२१ और १९३० में जेल यात्रा भी करनी पड़ी। राजस्थान और पंजाब में उन्होंने लोगों में राष्ट्रीय भावना जागृत की और समाज-सुधार का कार्य भी किया। आपने रुढ़ियों, नशा सेवन, अस्पृश्यता, सामाजिक कुरीतियों का डट कर विरोध किया और कहा, "विवाह में दहेज, दिखावा, फिजूलखर्ची बन्द हो, छोटी बारात और दिन में फेरे हों। मृत्यु भोज, रस्म पगड़ी और उठावनी के लेने-देने जैसे रिवाज छोड़े जायें। स्वास्थ्य और धन के शत्रु शराब, तम्बाकू एवं अन्य नशों से छुटकारा पायें। मुकदमें, थानों, अदालतों में न ले जाकर गांवों में ही पंच फैसले से निपटायें।

आज दिन, जिन गांवों में पीने के पानी के लाले पड़े रहते थे, वहां शराब की बोतलें घूमती-फिरती नजर आती हैं। विवाह-शादियों और दूसरी-दूसरी प्रकार की पार्टियों में पैसे का उछाल है। ये झूठे आडम्बर और लोक दिखावे तथा व्यसन समाज

को दिन-प्रतिदिन नीचे ले जा रहे हैं। हमने अपने घरों से सादगी को निकाल डाला है। दूध और लस्सी के स्थान पर क्षण-क्षण में सिगरेट और चाय पी जाने लगी है। शराब और मांस का जोर बढ़ रहा है। यह हम अपनी आने वाली सन्तान की जड़ें खोखली नहीं कर रहे तो और क्या कर रहे हैं? जो खुद बेकार रहेंगे, व्यसनों के शिकार होंगे, तो क्या आप स्वस्थ और शुद्ध-पवित्र सन्तान की कामना कर सकते हैं? गांवों में होने वाले चुनावों में पंची-सरपंची प्राप्त करने के लिए किये जाने वाले षड्यन्त्र, पार्टीबाजी आदि ने हमारे जीवन को विषैला बना दिया है।''

स्वामी जी ग्रामों का उत्थान चाहते थे। किसान को सम्पन्न देखना चाहते थे। आपने 'ग्राम सुधार नाटक' नामक पुस्तक का प्रकाशन भी करवाया। आपने अपने एक भाषण में कहा भी है—''.... इसीलिए देहात को बदलना है। उसे नवनिर्माण की चेतना का सन्देश देना है कि जिससे वे दिनों-दिन बढ़ने वाली बुराइयों का ताकत के साथ मुकाबला कर सकें। गांवों को आदर्शरूप देना है, पुराने भाईचारे को फिर लौटाना है। अन्धा-धुन्ध खर्च और व्यसनों में युवकों को बचाना है। हम पूरे प्रदेश को, सब घरों को, सुखी सम्पन्न, निर्व्यसन तथा भरे-पूरे देखना चाहते हैं।''

स्वामी जी शिक्षा-सन्त थे। कठोर परिश्रम करके ही उन्होंने शिक्षा अर्जित की और पंजाब व राजस्थान में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए शिक्षा संस्थाओं का जाल फैला दिया। उनका विश्वास था ''सन्तान की शिक्षा द्वारा आत्मिक व भौतिक उन्नति के बिना जोड़ा हुआ पैसा भी व्यर्थ है क्योंकि अनपढ़ संतान और पशु में कोई फर्क नहीं। अतः सावधान हो जाओ और युग के साथ चलने के लिए अपनी सन्तान को उच्च और सत् शिक्षा दिलाकर उनका व अपना जीवन सफल करो।''

कैप्टन भगवानसिंह जी ने कर्मयोगी स्वामी केशवानन्द जी के लिए कितने सटीक शब्दों का प्रयोग किया है– " उनकी एक

चिन्ता भारत के किसान की तरक्की थी। वह हर समय किसान के जीवन में बदलाव लाने की बात सोचते थे। उनको न खाने का शौक था, न पहनने का। उनका शौक था– गरीबों के घरों को खाने तथा पहनने की चीजों से भरने का, उनका शौक था देहात में फैली अशिक्षा, गरीबी तथा अंधविश्वास का दूर भगा देने का।"

कर्मयोगी स्वामी केशवानन्द जी ने आजीवन शिक्षा प्रसार, दलितोद्धार तथा सामाजिक सुधार के कार्य किए और १३ सितम्बर, १९७२ को दिल्ली के ताल कटोरा मार्ग पर चिरनिद्रा में लीन हो गए। स्वामी केशवानन्द स्मृति चैटिरेबिल ट्रस्ट, संगरिया ने स्वामी जी के विषय में लिखा है– "बीकानेर से भटिण्डा तक, हिसार से फाजिल्का तक तथा सीकर से श्रीगंगानगर तक के विशाल क्षेत्र में यदि कोई महापुरुष पैदा हुआ है, जिसे देववत् पूजनीय माना जाता है और जिसका उपकार जन-जन पर है तो वह स्वर्गीय स्वामी केशवानन्द ही हैं। वे इस क्षेत्र के समाज-सुधार के लिए गांधी, शिक्षा प्रचार के लिए मदन मोहन मालवीय और त्याग-तपस्या-सदाचार के लिए विनोबा भावे कहे जा सकते हैं।"

स्वामी केशवानन्द ने वेदान्त दर्शन का गहन अध्ययन करने के बाद तिलक के गीता रहस्य से निष्काम कर्मयोग की साधना सीखी। महर्षि दयानन्द के आदर्शों को प्रेरणा का स्रोत बनाया और महात्मा गांधी के अहिंसात्मक अस्त्र को धारण कर राष्ट्र-सेवा के महान यज्ञ में अपने जीवन की आहुति समर्पित कर दी। समाज तथा राष्ट्र के प्रति इसी समर्पण, त्याग, तपस्या, प्रेम, करुणा तथा सतत् कर्मनिष्ठा ने स्वामी केशवानन्द को युग-पुरुष बना दिया।

कर्मयोगी शिक्षासन्त स्वर्गीय स्वामी केशवानन्द इतिहास के

वे अमिट हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने आत्मनो मोक्षार्थम् जगत हिताय' का संकल्प लेकर साठ वर्ष तक जन-कल्याण करते हुए इसी में अपने मोक्ष तथा आत्म-कल्याण के दर्शन किए। उन्होंने मरुभूमि के चिर सुषुप्त क्षेत्र में जन-जागरण करने, वैचारिक क्रान्ति लाने तथा सामाजिक उत्थान का महान कार्य किया है। उस युग स्रष्टा सन्त शिरोमणि को उनके उत्कृष्ट कार्यों के लिए शत-शत नमन, कोटि-कोटि प्रणाम।"

अमरहुतात्मा भक्त फूलसिंह

हरियाणा में नारीशिक्षा के प्रचार-प्रसार का श्रेय भक्त फूलसिंह को जाता है। उनका जन्म जिला रोहतक के ग्राम माहरा में सन् १८८५ हुआ। आपके पिता एक साधारण किसान थे। आठ वर्ष की अवस्था में आपको निकट के गांव जूआं में प्रारम्भिक शिक्षा के लिए भेजा। बाल्यकाल से ही आपमें सेवाभाव, सरलता, सदाचार और निर्भयता आदि के गुण थे।

शिक्षा के बाद आप पटवारी बने। समाज-सेवा की धुन सिर पर सवार थी, इसलिए नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। अब आप सारा समय आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में लगाने लगे। आपने त्यागपत्र देने तक लगभग साढ़े चार हजार रुपये कमाए थे। आपने एक बड़ी पंचायत बुलवाई और उसमें रिश्वत की राशि जनता को लौटा दी और २३ मार्च, १९२० को गुरुकुल भैंसवाल की स्थापना की घोषणा की। इस अवसर पर आपने जनता से बीस हजार रु० एकत्रित किए। जो गुरुकुल को ही दे दिये गए। इस गुरुकुल की आधारशिला गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार के संस्थापक, अमरशहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने रखी थी। गुरुकुल के संचालन में समीपवर्ती गांवों के लोगों ने भक्त जी की अन्न-धन से सहायता की। अभी तक यह संस्था शिक्षा क्षेत्र में आर्य जगत की महान सेवा कर रही है।

भक्त फूलसिंह के त्याग और तपस्वी जीवन को देखकर ही गुरुकुल के संचालन में ग्राम आवंली निवासी चौधरी स्वरूप लाल, गणेशीलाल, भैंसवाल निवासी चौधरी अभयराम, टेकराम इत्यादि तथा रिवाड़ा निवासी चौधरी रामेराम, शेरसिंह व अन्य आसपास के
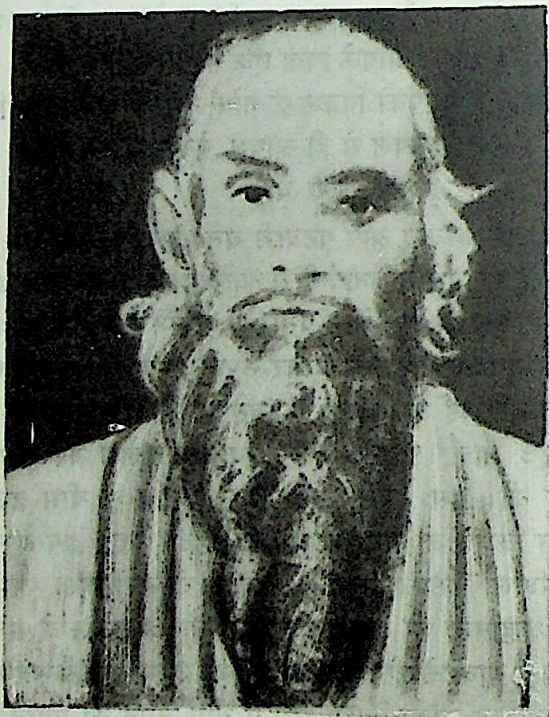
अमर हुतात्मा भक्त फूल सिंह
(१८८५–१९४२ ईस्वी)

ग्रामों के कर्मठ और निष्ठावान लोगों ने जीवनदान दिया था। सन्त

फूल जी की त्याग वृत्ति से प्रभावित होकर लोग उन्हें 'भक्त जी' के नाम से पुकारने लगे। वर्तमान काल में यह गुरुकुल विद्यालंकार और वेदालंकार की उपाधि का पाठ्यक्रम चला रहा है। भक्त फूलसिंह को गुरुकुल खोलने की सलाह' स्वामी **ब्रह्मानन्द** जी ने दी थी ताकि अधिक से अधिक वैदिक धर्म का प्रचार हो सके। उनका विश्वास था कि यहां से आर्य मिशनरी पैदा किए जाएं, जो दिग्दिगांतर में महर्षि दयानन्द सरस्वती का सन्देश पहुंचा सकें।

सन् १९३७-३८ में लाहौर में कसाई खाने को बन्द करवाने में भक्त जी का प्रमुख हाथ था। हैदराबाद रियासत के आर्यसत्याग्रह में आपने ७०० सत्याग्रही हैदराबाद भेजे। सत्याग्रह की समाप्ति पर महाशय कृष्णजी ने कहा था, ''जब भक्त फूलसिंह जैसे फरिश्ते आर्यसमाज में विद्यमान हैं, तब हमको जेल में कौन बन्द कर सकता है?'' लोहारू आर्यसमाज के नगर कीर्तन में भी आप पर प्राणघातक हमला किया गया था। उस समय आप बच गए। आपका दृढ़ विश्वास था– ''संसार का कल्याण भगवान दयानन्द के बताए हुए रास्ते पर चलने से ही हो सकता है। दुनिया में अगर सुख-शान्ति की वर्षा हो सकती है तो महर्षि दयानन्द के द्वारा दिखाये हुए सत्य मार्ग पर ही हो सकती है।''

भक्त जी कन्याओं की शिक्षा के लिए विशेष चिन्तित थे। अतः १९३६ में खानपुर के जंगल में कन्या गुरुकुल की स्थापना की। कन्याओं का प्रवेश तो हो गया परन्तु अध्यापन कार्य कराने वाली अध्यापिकाओं की समस्या खड़ी हो गई। ऐसी स्थिति में भक्त जी ने अपनी पुत्री सुभाषिणी जी को गुरुकुल की प्राचार्या नियुक्त करवाया। आज भी सुभाषिणी जी ही इसका संचालन कर रही हैं। गुरुकुल में आज अनेक विभाग हैं। जैसे– कन्या गुरुकुल, डिग्री

कालेज, आयुर्वेदिक कालेज, बी० एड० इत्यादि। इस समय यहां पर लगभग २५०० कन्याएं विद्या ग्रहण कर रही हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द जी की आज्ञानुसार भक्त जी ने शुद्धि का कार्य भी प्रारम्भ किया। उन्होंने इस काम के लिए कठोर परिश्रम किया और उपवास भी रखे। इस कारण वे मुसलमानों की आंखों में खटकने लगे। जिला हिसार के मोठ नामक स्थान के चमारबन्धुओं ने कुआं बनवाना आरम्भ किया। मुसलमानों ने इसका विरोध किया। मोठ के चमारबन्धु निराश होकर भक्त जी के पास आए और अपनी कष्ट भरी गाथा सुनाई। भक्त जी ने उन्हें कुआं बनाने का पूर्ण आश्वासन दिया। भक्त जी १ सितम्बर, १९४० को मोठ ग्राम पहुंच गए। उन्होंने लगातार तीन दिनों तक ग्राम के मुसलमानों को समझाया। मुसलमानों पर उनकी बातों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। भक्त जी ने आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया और कहा-- "कुआं बनने पर ही अन्नग्रहण करुंगा, अन्यथा यहीं प्राण त्याग दूंगा।" मुसलमानों ने भक्त जी को तीन-चार दिन बाद उठा कर जंगल में फैंक दिया। भक्त जी बच गए और पुनः २३ दिन के उपवास के बाद उन्हें अपने कार्य में सफलता मिल गई। कुआं बना और चमारबन्धुओं की पानी की समस्या हल हो गई। समस्त हरियाणा में जिस किसी को भी कहीं शरण नहीं मिलती थी, वह अन्त में भक्त जी के पास ही आकर शरण लेता था। भक्त जी यथाशक्ति उनके दुःख निवारण की चेष्टा करते थे।

विश्ववंद्य महात्मा गांधी जी ने उपरोक्त घटना के विषय में जब सुना तो बहुत प्रसन्न हुए और भक्त जी से मिलने की इच्छा प्रकट की। भक्त जी दिल्ली आए और बापू से लगभग डेढ़ घन्टे तक वार्तालाप चला। बापू ने भक्त जी से कहा, "आप आर्यसमाज के दायरे से निकल कर मेरे कार्यक्रम के अनुसार कार्य कीजिए।

समय-समय पर मैं भी आपको यथाशक्ति मदद देता रहूंगा। इससे आप देश की अधिक सेवा कर सकेंगे।" भक्त जी ने निश्छल भाव से कहा– "महात्मा जी मैं आपकी सब आज्ञाओं को मानने को तैयार हूं किन्तु आर्यसमाज को नहीं छोड़ सकता क्योंकि ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज तो मेरे रोम-रोम में रम चुके हैं। वे इस जन्म में तो निकल नहीं सकते।" महात्मा जी निरुत्तर हो गए।

भक्त जी ग्रामों का सुधार भी चाहते थे। पंचायती प्रथा के समर्थक थे और पंचायत के द्वारा ही परस्पर विवादों को शांत करवाते थे। विवाह आदि अवसरों पर व्यर्थ का खर्च व आडम्बर न किया जाए, इसके लिए उन्होंने सन् १९२५ में ग्राम गांधरा (हरियाणा) में सर्वखापों की एक पंचायत बुलवाई। पंचायत में बहुत से प्रस्ताव पास करवाए और हरियाणा में पालन करवाया।

सन्त जी ने सामाजिक कुरूतियों को मिटाने के लिए कई बार आमरण अनशन किए। आर्यसमाज़ के माध्यम से वैदिक धर्म का प्रचार किया। अपनी पैतृक सम्पत्ति तक बेच कर सामाजिक कार्यों में धन लगा दिया। अभी कन्या गुरुकुल अपनी शैशवावस्था में ही था कि १४ अगस्त, १९४२ को रात्रि नौ बजे चार धर्मान्ध मुसलमानों ने गोली मारकर हत्या कर दी। आज समाज में कितने त्यागी, कर्मनिष्ठ और सर्वत्यागी देखने को मिलते हैं?

●

महान क्रान्तिदर्शी राजा महेन्द्र प्रताप
(१८८६–१९७९ ईस्वी)

महान क्रान्तिदर्शी राजा महेन्द्र प्रताप

— डा० विजयेन्द्र स्नातक

अंग्रेजों की गुलामी से हिन्दुस्तान को आजाद करने के लिए पिछले सौ-सवा सौ वर्षों में देश में जो क्रांतिकारी प्रयास हुए उन्हें, सशस्त्र-विद्रोह, स्वातंत्र्य-संघर्ष, असहयोग आन्दोलन, सत्याग्रह आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। सन् १८५७ की सैनिकक्रान्ति जिसे विदेशी इतिहास लेखकों ने गदर या सिपाहीविद्रोह का नाम दिया है, वास्तव में ब्रिटिश शासन को हिन्दुस्तान से उखाड़ फैंकने के लिए सबसे पहला क्रांतिकारी सशस्त्र कदम था। इस सशस्त्र क्रांति ने केवल फौज में ही नहीं बल्कि उत्तर भारत की जनता में अंग्रेजों के प्रति रोष, घृणा और आवेश की भावना भर दी थी। भारत का यह पहला स्वतंत्रतासंग्राम था, जिसमें असफल होने पर भी हिन्दुस्तानियों के मन में ब्रिटिश शासन के प्रति तीव्र विरोध और स्वदेश के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया था। इस क्रांति को अंग्रेजों ने क्रूर और निर्दयी हथकंडों से दबा अवश्य दिया था किन्तु क्रांति की चिन्गारी भीतर ही भीतर सुलगती रही थी। वह चिन्गारी ही समय पाने पर शोला बनकर धधकी और राजा मेहन्द्र प्रताप जैसे महान् क्रांतिकारी को जन्म देने वाली सिद्ध हुई।

राजा महेन्द्र प्रताप की जन्मभूमि:

राजा महेन्द्र प्रताप का जन्म वर्तमान अलीगढ़ जिले की छोटी सी रियासत मुरसान में हुआ था। यह रियासत सीमा विस्तार में छोटी होने पर भी अपने शौर्य और पराक्रम के कारण अंग्रेजों के लिए एक समय आंख का कांटा रही थी। सन् १८५७ से पहले उत्तर भारत की जिन रियायतों के स्वदेशाभिमानी राजाओं ने अंग्रेजों को

हिन्दुस्तान से बाहर निकालने के लिए युद्ध और संघर्ष किया था, उनमें भरतपुर, मुरसान और हाथरस का नाम उल्लेखनीय है। इन तीनों रियासतों के जाट राजाओं ने जिस बहादुरी से अंग्रेजों से युद्ध किया, वह इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। सन् १८५७ की सशस्त्र क्रांति से चालीस वर्ष पहले हाथरस के जाट राजा दयाराम ने जिस वीरता से युद्ध किया था, वह अंग्रेजों के लिए दिल दहलाने वाला था। अंग्रेज इतिहास लेखक ग्राउस ने हाथरस के युद्ध के विषय में लिखा है– '२ मार्च १८१७ को जो भीषण गोलाबारी हाथरस के किले पर हुई वह एक भीषण अग्निवर्षा की, जो भारत में प्रयुक्त सर्वाधिक शक्तिशाली थी। हाथरस का किला इतना मजबूत था कि उसे फतह करना सरल न थ।'' हाथरस के साथ ही मुरसान रियासत है। इसके राजा ने भी अंग्रेजों के खिलाफ जमकर लोहा लिया किन्तु साधन और सेना के अभाव में इन राजाओं को पराजय का सामना करना पड़ा। मुरसान के राजा ने सन् १८१८ में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करके जन-धन की अपार हानि उठाई थी किन्तु उस समय भी अपनी टेक नहीं छोड़ी थी।

हाथरस के राजा दयाराम को अंग्रेजों ने बन्दी बना लिया था। सन् १८४१ में राजा दयाराम का देहान्त हो गया। उनके पुत्र गोविन्द सिंह गद्दी पर बैठे उस समय कोल (अलीगढ़) भी हाथरस राज्य में था। सन् १८५७ सैनिकविद्रोह के समय राजा गोविन्दसिंह ने अंग्रेजों का साथ दिया किन्तु विद्रोह शान्त हो जाने पर चालबाज अंग्रेजों में गोबिन्द सिंह को उनकी सम्पत्ति वापस नहीं दी। कुछ गांव, पचास हजार रुपये नकद और राजा की पदवी देकर अंग्रेजों ने हाथरस राज्य पर अपना पूर्णाधिकार कर लिया। राजा गोविन्दसिंह की सन् १८६१ में मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय अंग्रेजों की धोखाधड़ी से उनका मन अत्यन्त क्षुब्ध था। राजा गोविन्दसिंह

अपनी पत्नी को पुत्र गोद लेने का अधिकार दे गये थे। अतः रानी साहबकुंवरि ने जटोई के ठाकुर रूपसिंह के पुत्र हरनारायण सिंह को गोद ले लिया। रानी साहिबा अपने पुत्र हरनारायण सिंह को लेकर अपने वृन्दावन स्थित महल में रहने लगी। राजा हरनारायणसिंह अंग्रेजों के भक्त थे। उनके कोई पुत्र नहीं था इसलिए उन्होंने मुरसान के राजा बहादुर घनश्यामसिंह के तीसरे पुत्र महेन्द्र प्रताप को गोद ले लिया। इस प्रकार राजा महेन्द्र प्रताप मुरसान राज्य को छोड़कर हाथरस राज्य के स्वामी बने। वृन्दावन में हाथरस राज्य का विशाल महल है उसी में इनका शैशव व्यतीत हुआ।

राजा महेन्द्र प्रताप :

राजा महेन्द्र प्रताप का जन्म १ दिसम्बर सन् १८८६ ई० को अलीगढ़ जिले के मुरसान राज्य में हुआ। इनके पिता नाम राजा घनश्यामसिंह था, किन्तु हाथरस के राजा हरनारायणसिंह द्वारा गोद लिये जाने के कारण पितृ नाम हरनारायणसिंह ही लिखा जाता है। राजा घनश्यामसिंह बहुत वीर, बहादुर और पराक्रमी पुरुष थे। आंखों देखा हाल प्रसिद्ध है कि राजा घनश्यामसिंह शेर का शिकार आमने सामने ताल ठोककर करते थे। महेन्द्र प्रताप की निर्भीकता उनके पिता की देन है।

राजा हरनारायणसिंह ने बालक महेन्द्र प्रताप को लेकर अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा। परिवार में इस प्रश्न को लेकर विवाद उठ खड़ा हुआ। हाथरस राज्य के कुछ व्यक्ति महेन्द्र प्रताप को सम्पति का अधिकारी बनाना नहीं चाहते थे। उन्होंने महेन्द्र प्रताप को रास्ते से हटाने के लिए तरह-तरह के कुत्सित षड्यंत्र रचे। इन षड्यंत्रों के भय से बालक महेन्द्र प्रताप को पुनः मुरसान में लाकर रखा गया। यह प्रबन्ध उनके जीवन की सुरक्षा की दृष्टि से किया

गया था। कचहरी में भी उत्तराधिकार का मामला पेश हुआ, किन्तु

विरोधियों को इस षड्यंत्र में सफलता न मिल सकी और महेन्द्र को ही उत्तराधिकार के साथ राजा की पदवी प्राप्त हुई।

राजा महेन्द्र प्रताप का शैशव राजघराने के अनुसार बहुत सुख-चैन के साथ व्यतीत हुआ। वैभवजन्य सभी सुविधाएं उन्हें सुलभ थी। नौकर-चाकर, धाय, सेविका और सगी-साथियों से घिरे बालक महेन्द्र प्रताप को अपने शैशव में कभी कष्ट या अभाव का अनुभव नहीं हुआ। उन्होंने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि "मेरे नौकर-चाकर प्रतिक्षण मेरी सुख-सुविधाओं का ध्यान रखते और मेरे जीवन के बारे में अत्यधिक चिन्तित भी रहते थे। मेरी रुचि तथा आवश्यकता सबकी चिन्ता वे स्वयं करते थे।"

शिक्षा की व्यवस्था :

राजा हरनारायणसिह के दत्तक पुत्र होने के कारण महेन्द्र प्रताप अब एक साधारण बालक होकर युवराज थे और हाथरस राज्य के स्वामी थे। उनकी इस हैसियत को ध्यान में रखते हुए पहले उन्हें शिक्षा के लिए पब्लिक स्कूल में भेजा गया। उस समय महेन्द्र प्रताप की आयु आठ वर्ष थी। किन्तु कुछ समय बाद सर सैयद अहमद खां द्वारा स्थापित मुहम्मदन एंग्लो औरियंटल कॉलेजिएट स्कूल में भरती किया गया। सर सैयद उस समय के प्रसिद्ध सुधारक और शिक्षा प्रेमी थे। राजा हरनारायणसिह के साथ उनकी घनिष्ठ मित्रता थी। राजा महेन्द्र प्रताप को एक बड़े बंगले में रखा गया जिसमें उनकी देखरेख और सेवा के लिए दस नौकर तैनात किये गये। नौकर के साथ बग्घी में बैठकर स्कूल जाते और नौकर के साथ ही वापस बंगले में आते थे। स्कूल में पढ़ते समय ही इनके पिता राजा हरनारायणसिंह की मृत्यु हो गई और महेन्द्र प्रताप को अपनी रियासत की देखभाल का दायित्व वहन करना पड़ा।

अपनी आत्मकथा में महेन्द्र प्रताप ने लिखा है कि "मैं पढ़ाई में बहुत तेज नहीं था। मिडिल क्लास की परीक्षा में एक बार फेल होने पर मेरा पढ़ने की तरफ ध्यान गया।" मैट्रिक और इंटरमीडिएट पास करने के बाद बी० ए० में दाखिला लिया और एक वर्ष तक बी० ए० की पढ़ाई भी जमकर पूरी की लेकिन परीक्षा से पहले ही पारिवारिक परिस्थितियों के कारण अलीगढ़ छोड़ना पड़ा। सन् १९०७ में इन्होंने अलीगढ़ छोड़ा और शिक्षा की दिशा में आगे कोई प्रयास नहीं किया। जब तक अलीगढ़ में रहे इनका बंगला उस समय के प्रबुद्ध मुसलमान व्यक्तियों का अतिथि भवन था। सर सैयद अहमदखां इनकी पढ़ाई में रुचि लेते थे और समय-समय इनसे मिलकर इनकी प्रगति की स्वयं जांच भी करते रहते थे। उनके सहपाठियों में अहमद हुसैन, तकी जहीर, सुकुमार बनर्जी, नवाब मुहिउद्दीन, कुंवर मानसिह सिरोही, राजा गुलामहुसेन आदि प्रसिद्ध व्यक्ति थे। उस समय से ही महेन्द्र प्रताप के मन में धर्म और जातिगत भेदभाव को स्वीकार करने का भाव उत्पन्न हो गया था। वे हिन्दू और मुसलमान के बीच इंसानियत का ही रिश्ता मानते थे। कोई धार्मिक रिश्ता उन्हें मंजूर नहीं था।

विवाह :

राजा महेन्द्र प्रताप का विवाह कॉलेज में पढ़ने के दौरान ही हो गया था। इस विवाह के बारे में उन्होंने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि "मेरे बड़े भाई बलदेव सिंह का विवाह फरीदकोट में हुआ था। फरीदकोट के महाराजा ने इस विवाह में अपार धनराशि व्यय की थी। दो स्पेशल रेल ट्रेनों में बारात फरीदकोट गई थी और लाख रुपये नकद दहेज के रूप में दिये थे। इस वैभवशाली दहेज को देखकर मेरे मन में भी ऐसे शानदार विवाह की कल्पना जगी थी। मेरी यह कल्पना सचमुच उसदिन सत्य साबित हुई जिस दिन जींद

राज्य के कुछ बड़े अफसर मेरे विवाह का निमंत्रण लेकर हमारे घर

आये। वृन्दावन में सगाई की रस्म अदा की गई और मुझे सोने का कीमती पर्स दिया गया।"

विवाह की तिथि तय होने पर बारात का प्रबंध उसी तरह से किया गया जिस तरह से उनके बड़े भाई बलदेवसिंह की बारात का किया गया था। दो स्पेशल रेल ट्रेनों में बारात जींद राज्य की राजधानी संगरूर गई। बहुत बड़ा जलूस बड़ी शान और सजधज के साथ निकाला गया और जींद के महाराजा ने विवाह पर पर्याप्त राशि खर्च की। जब कभी महेन्द्र प्रताप अपनी ससुराल जींद जाते तब वहां इन्हें ग्यारह तोपों की सलामी दी जाती और स्टेशन पर सभी अफसर इनके स्वागत के लिए उपस्थित रहते। रात्रि में महाराजा का दरबार लगता और नृत्य-गान का समा बंधता। कभी-कभी महाराजा की डच रानी भी इस समारोह में उपस्थित होती थीं। विवाह होने के बाद भी राजा महेन्द्र प्रताप ने अपनी शिक्षा बन्द नहीं की और सम-विषम सभी परिस्थितियों में पढ़ने में दत्तचित्त रहे। इसी बीच उनके दो संतान हुई। पहले संतान पुत्री थी जिनका जन्म सन् १९०९ में हुआ और दूसरी संतान पुत्र था जिसका जन्म सन् १९१३ ई० में हुआ। इन दोनों बच्चों का नाम राजा साहब ने अपनी रुचि से रखा, किसी पंडित या पुरोहित से नामकरण नहीं कराया। पुत्री का नाम भक्ति और पुत्र का नाम प्रेम प्रताप रखा।

भारत भ्रमण :

अपने विद्यार्थी जीवन से ही राजा महेन्द्र प्रताप को यात्रा करने का शौक था। सन् १९०४ से १९०६ तक उन्होंने अपने बड़े भाई बलदेवसिंह के साथ भारत के सभी तीर्थस्थानों की यात्रा की। उसके बाद दक्षिण की ओर गये। तदनन्तर मांडले, शिलांग और रंगून

पहुंचे। उसी समय उनकी इच्छा चीन तक जाने की थी किन्तु अस्वस्थ हो जाने के कारण घर वापस आ गये। इन यात्राओं द्वारा उन्होंने भारतवर्ष का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त किया और अपनी आंखों से भारत की गरीबी और गुलामी की स्थिति से साक्षात्कार किया। दक्षिण के समुद्र तटवर्ती नगरों की यात्रा में भी उनका मन खूब रमता था। इसलिए मद्रास, कोचीन, कोयम्बूटर, त्रिवेन्द्रम, मैसूर, बंगलौर आदि सभी नगरों की उन्होंने कई बार यात्रा की। बम्बई, द्वारका, रामेश्वरम् तथा त्रावनकोर आदि स्थानों की यात्रा में उन्हें जो अनुभव हुए उनका उल्लेख राजा साहब ने अपनी आत्म-कथा में विस्तारपूर्वक किया है। यहां केवल द्वारका की एक घटना का उल्लेख करना हम इसलिए जरूर समझते है कि इससे उनका मानव-प्रेम और साम्य-व्यवहार व्यक्त होता है। द्वारका पहुंचने पर मंदिर के पुजारी ने राजा साहब से जाति पूछी। राजा साहब ने कहा मैं भंगी हूं। भंगी शब्द सुनते ही पुजारी स्तब्ध रह गया उसने राजा साहब को मंदिर में प्रवेश की अनुमति नहीं दी। राजा साहब के साथ उनकी माता तथा अन्य साथ भी थे, जो मंदिर के दर्शन के लिए लालायित थे, किन्तु राजा महेन्द्र प्रताप मनुष्य-मनुष्य में भेदभाव को स्वीकार नहीं करते थे। अतः मंदिर में दर्शनार्थ नहीं गये।

विदेश यात्रा :

राजा महेन्द्र प्रताप स्वदेश भ्रमण के बाद सन् १९०७ में विदेश भ्रमण के लिए अपनी पत्नी के साथ चल पड़े। पत्नी के स्वास्थ्य की देख भाल के लिए एक लेड़ी डाक्टर मिसेज स्काट भी साथ गई। उस समय राजा साहब की आयु बीस वर्ष थी। इतनी छोटी आयु में जिनेवा, मांसलीज, रोम, वेनिस, बुडापेस्ट, वियना, बर्लिन, ब्रुसेल्स, पेरिस, लन्दन आदि शहरों की यात्रा इन्होंने चार महीने में पूरी की। इन चार महीनों में इन्होंने अमरीका के प्रसिद्ध

शहर न्यूयार्क, वाशिंगटन, ओटावा, टोरन्टो, फिलाडेल्फिया आदि का भी भ्रमण किया और वहां से कनाड़ा भी गये। राजा महेन्द्र प्रताप इन यात्राओं में अवसर मिलते ही भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य और दार्शनिक तत्वचिन्तन पर भाषण देने से नहीं चूकते थे। कनाड़ा से अमरीका के नाइग्राफाल्स देखने जाते समय एक कस्टम अफसर ने इनसे पासपोर्ट मांगा जो उस समय इनके पास नहीं था। होटल में छोड़ आये थे। उस कस्टम अफसर ने राजा साहब का भारतीय दर्शन का भाषण सुना था और वह प्रभावित भी हुआ था। उसे व्यंग्यपूर्ण भाषा में कहा– "इतनी ऊंची फिलासफी भी भारत को गुलामी से बचा नहीं सकी।" राजा महेन्द्र प्रतापसिंह उस कस्टम अधिकारी का व्यंग्य आजीवन नहीं भूला। जब तक भारत आजाद नहीं हुआ वे हमेशा सोचते रहे कि भारत का जीवन-दर्शन तो सब देशों से ऊंचा है किन्तु गुलामी की जंजीरों से जकड़ा हमारा देश इस महान् दर्शन के होते हुए भी दुखी और दरिद्र है। गुलामी की यह जंजीर काटनी होगी।

यात्राओं का प्रभाव :

देश-विदेश की सुदीर्घ यात्राओं ने राजा महेन्द्र प्रताप के जीवन में एक नया परिवर्तन उत्पन्न किया। अपने देश की गुलामी से उनका मन भीतर ही भीतर अत्यधिक खिन्न रहने लगा। एक तरफ राजा-महाराजाओं का भोग-विलास से भरा वैभवपूर्ण जीवन और दूसरी ओर दारिद्रय से परिपूर्ण किसानों, मजदूरों और कामगारों का व्यथा पूर्ण जीवन उनकी आंखों में खटकने लगा। उन्हें स्वयं अपने वैभव पूर्ण जीवन के प्रति विराग पैदा हुआ और वे सोचने लगे कि जब देश की अस्सी प्रतिशत जनता गरीबी में फंसी पराधीनता में कराह रही है तो मुझे इस भोग-विलास का क्या अधिकार है। विदेशों की यात्रा से उनके मन में अपने देश की

पराधीन स्थिति का सही ज्ञान हुआ। उन्होंने अनुभव किया कि विदेशी लोग भारतवासियों को हेय दृष्टि से देखते हैं क्योंकि भारत एक गुलाम देश है। भारत के जो धनी व्यक्ति और राजा-नवाब विदेश जाकर सम्पत्ति बरबाद करते हैं, उसे भी विदेशी लोग हमारी मूर्खता मानते हैं।

राजा महेन्द्र प्रताप का शैशव काल अत्यन्त सुख-समृद्धि के वातावरण में व्यतीत हुआ था और उनके पिता तथा परिवार के अन्य सभी बुजुर्ग अंग्रेजों के भक्त थे किन्तु राजा महेन्द्र प्रताप इन समूचे परिवेश से तादात्म्य स्थापित नहीं कर सके थे। उनके भीतर मन के किसी कोने में अंग्रेजों के प्रति आक्रोश तथा अपने देश की पराधीनता के प्रति छटपटाहट बनी रहती थी। अपनी छोटी आयु और घर की आभ्यन्तर स्थिति के कारण वे अपने भाव व्यक्त तो नहीं कर पाते थे किन्तु एकान्त में बैठकर गुलामी की वेदना का अनुभव अवश्य करते थे, सबसे पहले उन्होंने अपनी भावना का संकेत सन् १९०६ में जींद के महाराजा को दिया। उनसे कलकत्ता में होने वाले इंडियन नेशनल कांग्रेस के अधिवेशन में शरीक होने की इच्छा व्यक्त की। जींद नरेश इस बात को सुनते ही चौंके और उन्होंने राजा महेन्द्र प्रताप से कठोर स्वर में कहा कि यदि तुम कलकत्ता कांग्रेस में जाओगे तो फिर इस राज्य में प्रवेश नहीं कर सकोगे। राजा साहब के लिए यह बात बहुत धक्का पहुंचाने वाली थी क्योंकि उनकी नवविवाहिता पत्नी उस समय जींद में थीं। राजा साहब मनस्वी व्यक्ति थे। उनके मन में भारतीय कांग्रेस कमेटी की गतिविधि और उद्देश्य को जानने की बलवती इच्छा थी। अतः उन्होंने जींद नरेश की नाराजगी की चिन्ता नहीं की और दूसरे दिन ही कलकत्ता के लिए प्रस्थान कर दिया। राजा साहब कांग्रेस अधिवेशन के अन्तिम दिन पहुंचे थे। उस समय कलकत्ता में देश के

गण्यमान्य नेता उपस्थित थे। दादाभाई नौरोजी उसके सभापति थे। बालगांगाधर तिलक, महाराजा बड़ौदा, विपिन चन्द्र पाल जैसे प्रमुख व्यक्ति वक्ता थे। इनके ओजस्वी भाषणों से इन पर जो सबसे गहरा प्रभाव पड़ा वह था स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग। कलकत्ता में महेन्द्र प्रताप स्वदेशी-रंग में रंगकर आये थे।

कांग्रेस अधिवेशन में जिन बड़े नेताओं को महेन्द्र प्रताप जी ने देखा था और जिनके भाषण सुने थे उन पर स्वदेश प्रेम की गहरी छाप थी। वापस आने पर इन्होंने निश्चय किया कि स्वदेशी वस्तुओं का ही व्यवहार करेंगे। उनके पास बड़ी मात्रा में विदेशी वस्त्र थे जिन्हें जलाने का निर्णय कर इकट्ठा कराने लगे। घर के अन्यसदस्यों में इस बात को लेकर एक झगड़ा भी हुआ। इनकी पत्नी ने अपने कपड़े-जलाने के लिए देने से इन्कार किया तो प्रतीक रूप में उनका एक विदेशी तौलिया ही इन्होंने जलाया। स्वदेशी वस्तुओं के प्रति राजा महेन्द्र प्रताप का आग्रह इतना प्रबल हो गया था कि विदेशी शराब भी उन्हें स्वीकार्य नहीं थी। उन्हीं दिनों महाराजा रनवीरसिंह देहरादून के एक होटल में ठहरे हुए थे। उन्होंने राजा महेन्द्र प्रताप को भोजन का निमंत्रण दिया और विदेशी शराब पीने के लिए दी। राजा साहब ने विदेशी शराब पीने से साफ इन्कार कर दिया। तब देहरादून के राजा के घर से स्वदेशी शराब का प्रबन्ध किया गया। इसके बाद राजा साहब ने शराब पीना ही छोड़ दिया।

तकनीकी विद्यालय की स्थापना का स्वरूप :

विदेश-यात्रा के बाद से राजा साहब के मन में एक ऐसे विद्यालय की स्थापना की भावना उत्पन्न हो गई थी, जिसमें शिक्षा प्राप्त कर बालक स्वावलम्बी हो सके और अपने लघु-उद्योग धंधे शुरू कर सकें। जापान में उन्होंने स्कूल के बच्चों को इस प्रकार काम सीखते और करते हुए देखा था। उस समय भारत में तकनीकी

ज्ञान की तरफ किसी का ध्यान नहीं गया था। अंग्रेज शासक तो

भारतीयों को स्वावलम्बी बनाना ही नहीं चाहते थे। उन्होंने तो भारत के उद्योग धंधों को समूल नष्ट करने का भरसक प्रयास किया था। इसलिए शिक्षा विभाग से या प्रशासन से इस दिशा में किसी प्रकार की सहायता या प्रोत्साहन का प्रश्न ही नहीं था। लेकिन टेक्निकल स्कूल के लिए प्रारंभ से ही साज-सामान, मशीन आदि की आवश्यकता होती है। उसके लिए आर्थिक साधनों की अपेक्षा रहती है। राजा साहब ने इस समस्या का हल निकाल लिया। उन्होंने अपने मन में निश्चय किया कि अपनी समस्त सम्पत्ति, मकान, महल, इस कार्य के लिए समर्पित कर दूंगा और तकनीकी शिक्षा के लिए अपने आवास-महल में ही विद्यालय खोलकर कार्य प्रारंभ किया जाएगा। विद्यार्थियों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जायेगा। गरीब विद्यार्थियों के आवास और भोजन की भी निःशुल्क व्यवस्था की जायेगी। यह एक बहुत बड़ा संकल्प था जिसके चरितार्थ करने में उन्होंने किसी दूसरे व्यक्ति से परामर्श भी नहीं किया था। अपनी पत्नी तथा परिवार के लोगों को भी इस सर्वस्वत्याग की बात नहीं बताई थी। यह राजा साहब का अपना दृढ़ मानस-संकल्प था जिसे उन्होंने सन् १९०९ में साकार कर दिखाया।

प्रेम महाविद्यालय की स्थापना तथा तकनीकी शिक्षा का शुभारंभ :

तकनीकी विद्यालय की स्थापना की बहुत ही दिलचस्प कहानी है। विद्यालय की स्थापना का दिवस निश्चित करते समय राजा साहब ने वृन्दावन के सबसे महत्वपूर्ण महीने पर ध्यान दिया। सावन महीने के झूला के समय तकनीकी विद्यालय की वृन्दावन में स्थापना हुई। विद्यालय का नामकरण संस्कार पुत्रोत्सव के समय

नामकरण की विधि से किया गया। निमंत्रण पत्र में पुत्र के नामकरण की बात ही लिखी गई और मित्रगण पुत्र के नामकरण के लिए एकत्र हुए। विधिपूर्वक यज्ञ किया गया। पं० मदन मोहन मालवीय उस यज्ञ में शामिल हुए। यज्ञ समाप्ति के बाद मित्रों ने पुत्र को देखने की इच्छा प्रकट की तो मालूम हुआ कि राजा साहब के कोई पुत्र है ही नहीं फिर नामकरण कैसा! सभी उपस्थित लोग चकित और स्तब्ध रह गये जब राजा साहब ने बताया कि मेरा मानस-पुत्र यह विद्यालय है, जिसमें छात्रों को निःशुल्क तकनीकी शिक्षा दी जायेगी। इस विद्यालय का ही नामकरण आज होना है। मित्रों ने विद्यालय का नाम राजा महेन्द्र प्रताप विद्यालय रखने का सुझाव दिया जिसे राजा साहब ने यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि सार्वजनिक संस्था का नाम किसी व्यक्ति के नाम पर नहीं होना चाहिए। अतः संस्था का नाम सर्व सम्मति से 'प्रेम महाविद्यालय' रखा गया। श्री महेश चन्द्र सिन्हा को इसका प्रिंसिपल नियुक्त किया गया। श्री सिन्हा अमेरिका से एम.ए. करके आये थे और उन्हें तकनीकी शिक्षा का अनुभव था। सन् १९०९ में इन्हीं की देखरेख में तकनीकी पाठ्यक्रम का शुभारंभ हुआ। संस्था के लिए ट्रस्ट का निर्माण हुआ और राजा साहब ने अपने पांच गांव इस कार्य के लिए दान दे दिये। ट्रस्ट बनाने में श्री मालवीय जी तथा श्री तेज बहादुर सप्रू ने सहायता की और राजा साहब को अपनी सम्पूर्ण पैतृक सम्पत्ति दान देने से रोका क्योंकि पैतृक सम्पत्ति का समर्पित करने का उनका अधिकार नहीं था किन्तु जो राजा साहब के हिस्से की अपनी सम्पत्ति थी वह उन्होंने तत्तकाल दान में दे दी जिसमें उनके आवास का वृन्दावन का विशाल राज-महल भी शामिल था। इस सारी सम्पत्ति की उस समय भी लाखों रुपये की कीमत थी। आज तो यह सम्पत्ति दस करोड़ से भी ज्यादा की है। इतनी विशाल

सम्पत्ति को जनता के लिए दान देकर राजा साहब को जो सुख मिला वह अवर्णनीय है।

राजा महेन्द्र प्रताप के मन में मानवता की भावना दिनों दिन प्रवल होती जा रही थी। देश-विदेश की यात्राओं में उन्होंने स्वदेशी की गरीबी और गुलामी की पीड़ा का पूरी तरह अनुभव कर लिया था। वृन्दावन में रहते हुए मंदिरों में वर्तमान जातिगत भेदभाव को देखकर भी उनका मन बहुत खिन्न रहता था। मनुष्य-मनुष्य के बीच जाति के नाम पर ऊंची-नीच, अस्पृश्यता, पूजा-उपासना निषेध आदि को राजा साहब मानवता पर कलंक मानते थे। उनकी दृष्टि में जाति, वर्ण रंग, देश आदि के द्वारा मानवता को विभक्त करना घोर अन्याय है, पाप है, अत्याचार है। ब्राह्मण और भंगी को वे भेद-बुद्धि से देखने के पक्ष में नहीं थे। इसलिए अपने विद्यालय में जाति या वर्ण के नाम पर कोई भेद उन्होंने स्वीकार नहीं किया। निर्धन, असहाय और निम्न जाति के बच्चों को प्रोत्साहित करने के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था की और खान-पान में समान स्थान दिया। एक साथ बैठकर भोजन की परिपाटी डाली और अस्पृश्यता को कलंक ठहराया। इस कार्य के लिए उन्होंने अर्थ की व्यवस्था की। अर्थ-व्यवस्था का प्रश्न आने पर उन्होंने अपनी चल-अचल सम्पत्ति को ट्रस्ट बनाया और सर्वस्वदान दे दिया। उनका यह दान उसी प्रकार का था जैसा कि पुराकथाओं में चक्रवर्ती राजाओं का कहा जाता है। अपना सर्वस्व प्रजाहित के लिए दान देकर चक्रवर्ती राजा गंगा के तट पर खड़े हो जाते थे और संकल्प पाठ करते थे कि जो कुछ मेरी सम्पत्ति है वह राष्ट्र कल्याण के लिए अर्पित है। ठीक, इसी तरह का सर्वस्व दान यमुना नदी के केशी घाट तट पर राजा महेन्द्र प्रताप ने किया था। तीस हजार वार्षिक आय के पांच गांव, तीन महल, सेवकों के आवास

गृह, उद्यान आदि सब प्रेम महाविद्यालय ट्रस्ट को भेंट कर दिये।

राजा महेन्द्र प्रताप का एक विशाल उद्यान शहर से दूर यमुना नदी के किनारे पर था। उस उद्यान में फलों के वृक्ष थे। उद्यान के साथ अस्सी एकड़ जमीन थी। यह सम्पत्ति ट्रस्ट बनाने के बाद शेष बीच थी। सन् १९११ में यह सारी सम्पत्ति भी उन्होंने आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश को सहर्ष दान दे दी। इस उद्यान और भूमि में आर्यसमाज ने गुरूकुल वृन्दावन की स्थापना की और जो बाद में एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय बना। राजा महेन्द्र प्रताप की उदारता और विशाल हृदयता का यह एक पुण्य स्मारक है। राजा साहब शिक्षा का प्रचार चाहते थे। धर्म-सम्प्रदाय का भेदभाव तो वे कई वर्ष पहले ही भूल चुके थे। गुरूकुल वृन्दावन में शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था की गई जिसकी सराहना राजा साहब ने मुक्तकंठ से की। गुरुकुल के पास जो भूमि है उसकी कीमत आज तो करोड़ों रुपयों में आंकी जा सकती है।

परतत्र भारत में मानवता के विचारों का प्रचार करना कठिन था, विश्वमैत्री की तो चर्चा भी संभव न थी। राजा महेन्द्र प्रताप का स्वतंत्रचेता मन बड़ी कठिन स्थिति में फंस गया था। जब तक अपना देश विदेशी गुलामी से न छूटे तब तक किसी भी विचार को जनता तक पहुंचाना दुष्कर ही है। फलतः उनके मन में हिन्दुस्तान को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त करने की भावना जोर पकड़ती जा रही थी। संयोग से उसी समय प्रथम विश्व युद्ध शुरू हो गया। जर्मनी ने अंग्रेजों के खिलाफ़ जंग छेड़ दिया और सारे संसार में अशांति की लहर व्याप्त हो गई। युद्ध की इस उत्तेजक लहर में राजा महेन्द्र प्रताप को भारत की आजादी की आशा दिखाई दी और उन्होंने इसका लाभ उठाने का मन में संकल्प किया।

विश्व-भ्रमण का दूसरा दौर :

सन् 1907 की प्रथम विश्व-यात्रा के बाद राजा महेंद्र प्रताप ने औद्योगिक शिक्षा का सूत्रपात प्रेम महाविद्यालय नामक संस्था की स्थापना द्वारा किया था। इस संस्था को वे उद्योग-धंधों की दृष्टि से स्वावलम्बी बनाना चाहते थे। इस उद्देश्य से उन्होंने दूसरी बार सन् 1911 में योरोप की यात्रा प्रारंभ की थी। जिन देशों में औद्योगिक शिक्षा धंधों का बाहुल्य था वहां जाकर उन्हें स्वयं देखना और उनकी कार्य प्रणाली से लाभान्वित होना उनका लक्ष्य था। लन्दन, बकिंघम, लीड्स, शेफील्ड, मैनचेस्टर, एडनिबर्ग, ग्लासगो, पेरिस, बर्लिन और ज्यूरिक की यात्रा करके वहां की तकनीकी संस्थाओं का उन्होंने अवलोकन किया। बकिंघम में वे सी.एफ. एन्ड्रूज के बड़े भाई के अतिथि रहे। आश्चर्य की बात यह है कि एन्ड्रूज के भाई को अपने छोटे भाई की ख्याति के विषय में कुछ भी पता नहीं था।

प्रथम विश्व-युद्ध का समाचार और विदेश जाने का संकल्प :

राजा महेन्द्र प्रताप ने अपनी जीवनी में लिखा है कि प्रथम विश्व युद्ध छिड़ने का समाचार उन्हें देहरादून से वृन्दावन आते समय रेल में मिला था। युद्ध का समाचार उनके मन को उद्वेलित करने वाला सिद्ध हुआ। वृन्दावन पहुंचने पर उन्होंने अपने मन में संकल्प किया कि चाहे कितना भी कष्ट क्यों न उठाना पड़े, विदेश जाकर युद्ध की स्थिति को समझना है और इस मौके से लाभ उठाकर हिन्दुस्तान को आज़ाद करना है। उसी समय अगस्त मास में प्रेम महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव पर आगरा कमिश्नरी के कमिश्नर पुरस्कार वितरण करने आये थे। राजा महेन्द्र प्रताप ने अंग्रेज कमिश्नर की उपस्थिति में अपने भाषण में बड़े आवेशपूर्ण शब्दों में कहा कि ''मैं अन्याय के स्थान पर अपने देश में न्याय का

शासन देखना चाहता हूं। मैं भारत को आजाद देखना चाहता हूं।"

इस भाषण से अंग्रेज कमिश्नर मन ही मन बहुत नाराज हो गया और दूसरे दिन जिलाधीश डम्पियर द्वारा राजा साहब को मथुरा बुलाया गया। मथुरा पहुंचने पर कमिश्नर ने राजा महेन्द्र प्रताप को ताड़ना देते हुए कल के भाषण के लिए बुरा भला कहा। उस अंग्रेज कमिश्नर की लताड़ ही राजा महेन्द्र प्रताप के मन में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति रोष, घृणा और विद्वेष का बीज बो गयी। उसी क्षण राजा महेंद्र प्रताप ने निर्णय किया कि अब भारत में रहकर भोग विलास का जीवन जीना व्यर्थ है। इसी बीच एक और घटना घटी जिसने राजा महेन्द्र प्रताप को उत्तेजित कर दिया। देहरादून से 'निर्बल सेवक' नामक समाचार पत्र राजा साहब निकालते थे। उस पत्र में जर्मनी के समर्थन में छपे लेख के कारण पांच सौ रुपये जुर्माना किया गया। वह जुर्माना तो राजा साहब ने अदा कर दिया किंतु अंग्रेजों के क्रूर व्यवहार के प्रति उनका मन क्रोध और घृणा से भर गया।

राजा साहब ने इन घटनाओं के बाद योरोप का निर्णय कर लिया था किंतु पासपोर्ट मिलने में विलम्ब हो रहा था। शायद अंग्रेज शासक उन्हें पासपोर्ट देकर योरोप जाने की सुविधा देंना नहीं चाहते थे। राजा साहब ने ऐसी स्थिति में बिना पासपोर्ट के विदेश जाने का निश्चय कर लिया। इटली का एक जलपोत उस समय इंग्लैंड जा रहा था किन्तु उसके अधिकारी ने बिना पासपोर्ट ले जाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। स्वामी श्रद्धानन्द (तत्कालीन नाम महात्मा मुंशीराम जी) के ज्येष्ठ पुत्र श्री हरीशचन्द्र भी उस समय राजा साहब के साथ थे। हरिश्चन्द्र का देहरादून में राजा साहब से परिचय हो गया था और उन्हें राजा साहब के भावी कार्यक्रम का ज्ञान था। वे भी भारत को अंग्रेजों की गुलामी से छुड़ाने में राजा

साहब की सहायता करने को योरोप जा रहे थे। मैसर्स थौमस कुक

एन्ड सन्स के मालिक ने राजा साहब और हरिश्चन्द्र को बिना पासपोर्ट के अपनी कम्पनी के पी.एन्ड ओ. स्टीमर द्वारा इंग्लैंड ले जाने की स्वीकृति दे दी। राजा साहब ने अपने लिए प्रथम श्रेणी का तथा हरिश्चन्द्र के लिए द्वितीय श्रेणी का टिकट खरीद लिया और इस प्रकार गुप्त रूप से राजा साहब और हरिश्चन्द्र इंगलैंड के लिए रवाना हो गये। इसके बाद वे जर्मनी के शासक कैसर से भेंट करने जर्मनी गये।

जर्मनी राजा साहब का परिचय ऐसे लोगों से हुआ जो उस समय युद्ध के मोर्चो से सम्बन्धित थे। फील्ड मार्शल मैक्कैजीन ने स्वयं साथ जाकर राजा साहब को युद्ध का मोर्चा दिखाया। उस समय जर्मनी की तोपें गोले बरसा रही थीं, जो रूसी क्षेत्र में गिर रहे थे।

जर्मनी विल्हैल्म कैसर से भेंट :

जर्मनी में विदेशी मामलों के उपमंत्री जिम्परमेन राजा महेन्द्र प्रताप को कैसर से मिलाने शाही महल ले गये। शाही महल में प्रवेश करते समय राजा साहब सबसे आगे थे और उपमंत्री उनके पीछे चल रहे थे। कैसर के साथ राजा साहब की अंग्रेजी में बातचीत हुई। कैसर का अंग्रेजी भाषा पर पूरा अधिकार था किन्तु वह अंग्रेजी का उच्चारण जानबूझ कर दबाव के साथ करते थे ताकि श्रोता को मालूम पड़े कि कैसर कोई दूसरी भाषा बोल रहे हैं। बीस मिनट की भेंटवार्ता में कैसर साहब खड़े ही रहे और उन्होंने राजा साहब को बैठने को नहीं कहा। बातचीत के दौरान कैसर ने भविष्यवाणी करते हुए कहा कि अंग्रेजों को शीघ्र ही भारत छोड़ना होगा। राजा साहब ने इस भविष्यवाणी की पुष्टि करते हुए कहा कि यह बात अंग्रेज जानते हैं और स्वयं कहते हैं कि अंग्रेज सौ वर्ष के बाद भारत में नहीं

टिक सकेंगे। वार्तालाप समाप्त होने पर कैसर ने राजा साहब से कहा कि अफगानिस्तान के अमीर को मेरी तरफ से बधाई देना मत भूलना।

जर्मनी से चलते समय वहां के चांसलर ने राजा साहब को एक पत्र दिया जिसमें भारत की आजादी के प्रयत्नों में उन्हें हर सम्भव सहायता देने का वायदा था। जर्मनी से आश्वासन पाकर राजा साहब ने अपनी अफगानिस्तान की यात्रा का कार्यक्रम बनाया।

टर्की को प्रस्थान :

राजा साहब वुडापेस्ट होकर बुल्गारिया पहुंचे और वहां से टर्की के लिए प्रस्थान किया। इस्ताम्बुल में मुस्लिम जगत के प्रधान सुल्तान रसीद साहब से राजा साहब की भेंट हुई। आगे बढ़ने के लिए एक एनवर पाशा से सुरक्षात्मक कार्यवाही के लिए कहा और उन्होंने एशिया माइनर में पर्सिया के मध्य से गुजरने का प्रबन्ध कर दिया। इस यात्रा में बीहड़ वन और वृक्षहीन धूल भरा रेगिस्तान दो-दो सप्ताह घोड़े की पीठ पर बैठकर काटना पड़ा। रास्ता अनजाना और दुर्गम था। लेकिन मंजिल पकड़ने की धुन थी। रेगिस्तान की लंबी यात्रा पूरी करने में एक कठिनाई और भी थी। अंग्रेजी तथा रूसी फौजें इस इलाके को घेरे हुए थीं और प्रतिपल भय रहता था कि कहीं पकड़े न जायें। जैसे-तैसे राजा साहब की टोली हैरत पहुंच गयी। हैरत पहुंचने पर वहां के शासक ने इनका भव्य स्वागत किया और राजकीय सम्मान से ठहराया।

अफगान बादशाह से भेंट और भारत के लिए अस्थायी सरकार का निर्माण

अफगानिस्तान के बादशाह ने राजा साहब को बातचीत करने के लिए बुलाया और लम्बे समय तक बातचीत की। इस वार्तालाप

के समय प्रधानमंत्री नसरुल्लाखां राजकुमार एमानुल्लाखां और अमानुल्लाखां आदि उपस्थित थे। सारी बातचीत हिन्दुस्तान के बारे में हुई और कई दिन तक आजादी के लिए कार्यक्रम बनाए जाते रहे। इस बातचीत के बाद १ दिसम्बर १९१५ ई० को राजा महेन्द्र प्रताप ने भारत के लिए एक अस्थायी सरकार (प्राविजनल गवर्नमेंट) का निर्माण किया जिसके प्रेसीडेन्ट वे स्वयं बने तथा मौलाना वरकतुल्लाखां को प्रधानमंत्री बनाया। इस सरकार में अन्य मंत्रियों को भी नियुक्त किया गया तथा यह निर्णय हुआ कि जब तक भारत आजाद नहीं होता यह अस्थायी सरकार प्रशासनिक कार्य करेगी। भारत के स्वतंत्र होने पर इसका कार्यकाल समाप्त हो जाएगा और भारत में नयी सरकार का गठन होगा।

अस्थायी सरकार की योजना राजा महेन्द्र प्रताप के मस्तिष्क की उपज थी और उन्हीं की सूझबूझ से यह सारा कार्य अफगानिस्तान में सम्पन्न हुआ था। मौलाना बरकतुल्लाखां राजा साहब के परमभक्त और अनुयायी थे और उनके आदेश पर ही काम करते थे।

अफगानिस्तान में उन दिनों युद्ध की गर्मी थी। अफगानिस्तान के बादशाह को राजा साहब ने सलाह दी थी कि वह रूस के शासक जार के साथ युद्ध विषयक बात करें और उन्होंने स्वयं रूस के सम्राट् जार को पत्र लिखकर अपनी भारत की अस्थायी सरकार की सूचना भेजी थी। यह सूचनापत्र स्वर्ण की पट्टी पर लिखा गया था जिससे लेकर मुहम्मद अली और शमशेर सिंह (मथुरा सिंह) दूत के रूप में रूस गये थे। रूस जाकर युद्ध की तैयारी करने का कार्यक्रम राजा साहब को रद्द करना पड़ा क्योंकि रूसी जनरल ने कहा था कि इस समय रूस की सीमा में प्रवेश करना खतरे से खाली नहीं है। उस समय तो राजा साहब रूस नहीं जा सके किन्तु कुछ समय बाद रूस

जाने का अवसर मिला।

रूस में आगमन और लेनिन से भेंट

अफगानिस्तान के बादशाह अमानुल्ला ने अंग्रजों के खिलाफ युद्ध की घोषणा की थी तभी राजा साहब ने वहां जाना तय किया। दो हजार मार्क देकर उन्होंने एक लड़ाकू जहाज युद्ध क्षेत्र तक उन्हें पहुंचाने के लिए भाड़े पर लिया। राजा साहब बिल्कुल अकेले एक पोर्टफोलियों लेकर वहां पहुंचे। वहीं से उन्होंने मास्को जाने का निश्चय किया और वहां प्रो० योसनेरोंसकी द्वारा लेनिन से मुलाकात का प्रबन्ध कराया। लेनिन से यह मुलाकात कुछ फलप्रद साबित नहीं हुई। हिन्दुस्तान की आजादी के लिए लेनिन ने कोई सहायता देना स्वीकार नहीं किया क्योंकि उस समय वे अपनी सरकार को सुदृढ़ बनाने में व्यस्त थे। लेनिन से भेंट करने के बाद राजा साहब ने पुनः अफगानिस्तान वापस आना तय किया और सन् १९१८ में वे सोवियत डिप्लोमेंट के रूप में हैरत पहुंचे। वहां से काबुल गये और बादशाह अगानुल्लाखां को सोवियत मिशन का विधिवत् परिचय कराया। बादशाह ने राजा महेन्द्र प्रताप के ठहरने का प्रबन्ध सरदार नसरुल्लाखां के महल में किया। काबुल में रहते हुए उन्हें बादशाह अमानुल्लाखां ने सात देशों के लिए पत्र दिये जिनमें तिब्बत, चीन, जापान, स्याम, अमेरिका, जर्मनी और टर्की के लिए संदेश थे। बादशाह अमानुल्लाखां ने विदा होते समय राजा साहब को अपना फोटो तथा सोने की मोटी चेन के साथ एक घड़ी उपहारस्वरूप प्रदान की।

प्रथम महायुद्ध समाप्त हो चुका था। विश्व के मानचित्र पर राष्ट्रों के नए शासनतंत्र उभर आये थे। राजा साहब भारत को आजाद न कर पाने से अत्यन्त दुखी थे किन्तु उनका मिशन ज्यों का त्यों काम कर रहा था। रूस की यात्रा से निराश होकर वे जर्मनी

वापस आ गये और वहीं अपना दफ्तर खोलकर भारत को आजाद करने की विस्तृत योजना तैयार करने में पूरे जी-जान से जुट गये। इस कठिन कार्य में अब वे अकेले पड़ गये थे। उनके कुछ साथी तो दिवंगत हो गये थे और कुछ उन्हें छोड़कर चले गये थे। धुन के पक्के राजा महेन्द्र प्रताप अकेले की हिन्दुस्तान की आजादी के लिए प्रयत्नशील थे। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान जर्मनी, अफगानिस्तान, जापान, चीन, इटली, रूस, अमेरिका आदि देशों की अनेक बार यात्रा करने पर जब कोई फल न निकला तो उन्होंने मानव-कल्याण का नया दृष्टिकोण अपना लिया और उसे ही अपने जीवन का ध्येय बनाकर मानवता के कल्याण के निमित्त विश्वमैत्री संघ की स्थापना द्वारा अपने सिद्धान्तों के प्रचार में लग गये। सन् १९२० से १९४६ तक वे ब्रिटिश साम्राज्य की सीमाओं को छोड़कर सभी देशों में भ्रमण करते रहे और अन्त में जापान में स्थायी रूप से कार्यालय की स्थापना कर कार्य करने लगे। विश्वसंघ का उनका कार्यक्रम आज के युद्धप्रिय देशों के लिए स्वीकार्य भले ही न हो किन्तु उनकी प्रशंसा सभी राष्ट्रों ने की है।

●

किसान केसरी चौधरी बलदेवराम मिर्धा

(१८८९–१९५३ ईस्वी)

चौधरी बलदेवराम मिर्धा

चौधरी बलदेवराम मिर्धा का जन्म १७ जनवरी, १८८९ में नागौर जिला के कुचेरा ग्राम में चौधरी मंगा राम जी के यहां हुआ था। आपका गोत्र 'राड़' था। 'मिर्धा' की उपाधि तो दरबार की ओर से मिली थी। आपकी शिक्षा जोधपुर में हुई। 'किसान केसरी' का खिताब राजस्थानी जनता ने दिया। इस सम्बन्ध में चौ० बलराम जाखड़ के विचार इस प्रकार हैं– ''राजस्थान में किसानों को उनकी दयनीय स्थिति से उबारने में बलदेवराम जी मिर्धा की प्रमुख भूमिका कभी भुलायी नहीं जा सकती। वे किसानों के हितों के लिए सदा संघर्षरत रहे और यही कारण है कि वे 'किसान केसरी' के नाम से लोकप्रिय हुए। किसान-समाज को जर्जर बनाने वाले सामाजिक रीति-रिवाजें को समाप्त करने के लिए श्री बलदेवराम जी ने सफ़ल अभियान चलाया, यद्यपि इसके लिए उन्हें अपनी कटु आलोचना सहनी पड़ी।''

शिक्षा संमाप्त करने के पश्चात् आप जनसंख्या विभाग में नियुक्त किए गए। सन् १९१४ में मिर्धा जी पुलिस विभाग में थानेदार के पदभार को संभाला। सन् १९२१ में आप तत्कालीन आई० जी० पी० श्री एम० आर० कोटेवाला के रीडर बने। सन् १९२३ में आपकी नियुक्ति इंस्पेक्टर के पद पर हुई। १९२६ ई० में जोधपुर के एस० पी० बने। सन् १९४३ के प्रथम मास में डी० आई० जी० पी० के पद से पदोन्नत करके श्रम विभाग के संचालक का पद संभाला। जनवरी, १९४७ में राज्य सेवा के उच्च पद रहते हुए भी आपने जनसेवा करने के लिए त्याग पत्र दे दिया।

चौधरी बलदेवराम मिर्धा जी ने राज्य सेवा में रहते हुए भी

जनहित के सराहनीय कार्य किए। त्याग पत्र देने के पश्चात् आप जोधपुर रियासत, जो इस समय मारवाड़ कहलाती थी, गांव-गांव, घर-घर गए और किसानों को शिक्षित किया। उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा और कहा "मुझे अन्याय कभी भी बर्दास्त नहीं होता। अभयता और स्वार्थ रहित वृत्ति मेरे जीवन का मंत्र है। मैं ये भावनायें किसानों में भरूंगा। इन्हीं के लिए जीऊंगा और इन्हीं के लिए मरूंगा।"

मिर्धा जी सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति के अग्रदूत थे। इन्होंने किसानों के उत्थान, उनमें व्याप्त बाल-विवाह, दहेज प्रथा, नशाखोरी की आदत की समाप्ति के लिए समस्त जीवन होम दिया। उन्होंने निःस्वार्थभाव से किसानों की सेवा की। किसानों को जीने की राह दिखाई। उनकी इन्हीं सेवाओं से प्रभावित होकर श्री श्याम सुन्दर व्यास जी ने लिखा है– "श्री मिर्धा जी को सत्ता का मोह नहीं था। वे तो एक मसीहा के रूप में अपने अन्तिम दम तक किसान साथियों की सेवा करते हुए ही इस संसार से विदा हो गए। वे आज भी किसानों के बीच प्रेरणा के स्रोत बने हुए हैं और इसलिए उन्हें क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास में 'किसानों का मसीहा' कहकर ही सदा स्वर्ण अक्षरों में उल्लेख किया जायेगा।"

मिर्धाजी ने केवल किसानों को सामन्तों के विरुद्ध ही खड़ा नहीं किया बल्कि उन्हें सामाजिक कुरीतिओं को समाप्त करने का भी आहवान किया। इस विषय में उपराष्ट्रपति डा० शंकर दयाल शर्मा के विचार दृष्टव्य हैं; "उन्होंने किसान-समाज को बहुत नजदीक से देखा था। वे उनकी व्यक्तिगत और सामाजिक कुरीतियों से अच्छी तरह से परिचित थे। उनकी मान्यता थी कि केवल सामंतीय बन्धनों से ही छुटकारा मिल जाने पर किसान आजाद नहीं होगा, बल्कि उसे

कुछ निजी सामाजिक बंधनों से भी छुटकारा हासिल करना होगा।

..... वे फिजूल खर्च के विरोधी थे। जन्म, विवाह और मृत्यु आदि अवसरों पर तरह-तरह के संस्कारों में किसानों का बहुत धन खर्च होता था। यहां तक कि उन लोगों को इसलिए कर्ज तक लेना पड़ता था। मिर्धा जी ने इस तरह के रीति-रिवाजों का विरोध किया। वे चाहते थे कि किसान इस प्रकार से बचे हुए धन का उत्पादन बढ़ाने तथा परिवार को शिक्षा दिलाने में खर्च करें। वे किसानों की दयनीय आर्थिक स्थिति का एक बहुत बड़ा कारण उसकी सामाजिक कुरीतियों को ही मानते थे।''

मिर्धा जी वर्गभेद, अस्पृश्यता आदि को अमानवीय मानते थे। पिछड़े लोगों की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहते थे। उन्होंने इस बात के लिए भी संघर्ष किया कि पिछले वर्ग के लोगों को सार्वजनिक कुओं से पानी भरने का अधिकार दिया जाए। इसके लिए उनको कुछ वर्ग विशेष के लोगों के विरोध का सामना भी करना पड़ा परन्तु वे अपने मार्ग पर अडिग रहे।

आप शिक्षा को बहुत महत्त्व देते थे। आपने अनेक स्थानों पर, विशेष कर गांवों में विद्यालय खुलवाए तथा छात्रों के रहने के लिए छात्रावासों का निर्माण भी करवाया। जोधपुर में जाट बोर्डिंग समस्त मारवाड के किसान छात्रों का केन्द्रीय स्थल था, जो बाद में किसान छात्रावास में परिवर्तित हो गया। मिर्धा जी ने जगह-जगह चन्दा लेकर छात्रावास बनवाए और जागीरदारों के जुल्मों से जकड़े किसानों को शोषण से बचाया। सरदारपुरा स्थित उनकी कोठी पर मारवाड़ के किसानों का जमघट लगा रहता था। शोषित किसानों की बातें धैर्य से सुनते और कहते – ''डरते किसलिए हो? हम किसान भेड़-बकरी नहीं हैं। मेरे धरती पुत्रो! हम में अपार शक्ति है। समाज के कंटकों से डरेंगे तो काम कदापि नहीं चलेगा। जो

अमुर हैं, अन्यायी हैं, लोभी हैं, लालाची हैं, दंभी हैं, निरंकुश है, वे सभी धरती के ऊपर भार हैं, उनसे हमारा उद्धार नहीं हो सकता।"

मिर्धा जी ने किसानों पर जुल्म होते देखे थे। वे स्वयं भी इस बात को भली-भांति जानते थे। अतः उन्होंने जमींदारों के विरुद्ध किसानों को संगठित किया। किसान सम्मेलन किए और उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सतर्क किया और अन्त में 'मारवाड़ किसान सभा' नाम से एक संगठन तैयार किया। बाद में, अन्य प्रतिष्ठित किसानों के साथ मिल कर 'राजस्थान किसान सभा' का गठन किया ताकि समस्त राजस्थान में किसानों की आवाज सुनी जा सकें। प्रथम आम चुनावों से पूर्व आपनें 'राजस्थान किसान सभा' को भंग कर दिया और पं० जवाहरलाल नेहरू के सुझाव पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में सम्मिलित हो गए। श्री परसराम मदेरणा जी के अनुसार – "राजस्थान किसान सभा" को भंग कर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में अपने साथियों सहित सम्मिलित होने का निर्णय सामयिक ही नहीं बल्कि उनके भविष्यद्रष्टा होने का परिचायक है। उनका यह दृढ़ अभिमत था कि प्रगतिशील शक्तियों द्वारा एक जुट हो, जन-आन्दोलन को सही एवं सशक्त दिशा प्रदान की जा सकती है। उनका कार्यक्षेत्र विस्तृत होकर सम्पूर्ण राजस्थान का किसान उनसे प्रेरणा एवं शक्ति प्राप्त करने लगा।"

२ अगस्त, १९५३ को ६४ वर्ष की आयु में एक जनसभा में हृदयगति रुक जाने से मिर्धा जी का देहावसान हो गया। इसप्रकार किसानों कि हृदय-सम्राट, एक समाजसेवी और दलितों के मसीहा का अन्तिम क्षण भी समाज की सेवा करते-करते बीता। श्री मोहनराम डूकिया के शब्दों में– "मिर्धा जी का व्यक्तित्व बड़ा मोहक था। जनमानस के हृदय पर उनका साम्राज्य था। यही कारण था कि किसान जगत में उनकी बात श्रद्धा और आदर से मानी जाती

रही। मिर्धा जी ने जन-जागृति की प्रतीति कराई। उन्होंने अपने समय में लोगों में जीवनभर प्रेरणा भरी थी। मिर्धा जी जीवंत पुरुषार्थ थे। जन-मानस में जीवंतता निर्माण करना उनका जीवन पर्यन्त कार्य रहा। उन्होंने किसी पद के लिए नहीं, किसी ऐश्वर्य के लिए नहीं, स्वार्थ के लिए नहीं, अपितु आने वाली पीढ़ी के लिए यज्ञ किया और जीवनभर अधिक श्रम साधना की आहुतियां देकर जागृति की आग को प्रज्ज्वलित करते रहे।"

●

महामना महाराजा श्री कृष्णसिंह

भरतपुर के वीर-प्रसूता भूमि ने अनेक वीर और लोकप्रिय राजाओं को जन्म दिया है। इसी पुण्य-भूमि ने ४ अक्टूबर, १८९९ में एक बालक को जन्म दिया जो बात में "लेफिटनैन्ट कर्नल हिज हाइनेस, महाराजा श्री ब्रजेन्द्र सवाई कृष्णसिंह बहादुरजंग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। २६ अगस्त १९०० में उन्हें राज्याधिकारी घोषित किया गया क्योंकि आप के पिता श्री रार्मासह को अधिक अपव्ययी घोषित करके गद्दी से उतार दिया गया था। राज्य का प्रबन्ध कौंसिल आफ एजेन्सी द्वारा किया जाता था, जो कि ब्रिटिश सरकार के पालिटीकल एजेन्ट की देखभाल तथा नियंत्रण में कार्य करती थी।

महाराजा यशवन्तसिह श्री कृष्णसिह जी के पितामह थे। उनके पश्चात् महाराजा रामसिंह जी गद्दी पर बैंठे। वे अंग्रेजों के प्रति रुचिवान न थे। अंग्रेजी सरकार ने उन पर तरह-तरह के आरोप लगाए और अन्त में १९२८ में अति अपव्ययी होने का आरोप लगाकर गद्दी से उतार दिया और देवली भेज दिया। मार्च, १९२९ में आपका देहावसान हुआ।

महाराजा अभी ११ वर्ष के ही थे कि राजमाता गिरराज कौर को शासन-भार संभालना पड़ा। वे बहुत निपुण शासिका सिद्ध हुईं। आप विदुषी थीं। आपने आयुर्वेदिक चिकित्सालय खुलवाए और वैद्यों से कई ग्रन्थ लिखवाए। आप नारी-शिक्षा की पक्षपाती थीं। आपने वृजविलास नामक ग्रन्थ की रचना भी की।

२८ नवम्बर, १९१८ में लार्ड चैक्सफोर्ड की अध्यक्षता में महाराजा श्रीकृष्णसिह का राज्याभिषेक हुआ। सारी प्रजा खुशी से झूम उठी। आपके पितामह महाराजा यशवन्त सिह जी के

बाल्यकाल में भी राज-प्रवन्ध एक पंचायत द्वारा किया जाता था, जो

कि राज्य कार्यकारिणी सभा थी। उसी पंचायत का संगठन पुनः किया गया। और उसका नाम अब 'स्टेट कौंसिल' रखा गया। इस के प्रधान बख्शी रघुवीरसिंह थे। उन्होंने ही महाराज के पालन-पोषण का उत्तरदायित्व निभाया। राजामाता श्री कृष्ण को शिक्षा दिलाती थीं।

महाराजा श्रीकृष्ण की प्रारम्भिक शिक्षा मेयो कालेज, अजमेर में हुई। कालेज जीवन में आपसे प्राचार्य और प्राध्यापक बहुत प्रभावित हुए। १९१४ में आपने इंगलैंड की यात्रा की और वहां के शासकों से संपर्क बनाए रखा। १९१६ में आपने महाराजा जार्ज पंचम' प्रिंस ऑफ वेल्स तथा साम्राज्ञी 'मेरी ऑफ वेल्स' से आगरा में भेंट की। १९१७ में जार्ज पंचम के राज्याभिषेक में दिल्ली दरबार में आयोजित सभा में भाग लिया। ३ मार्च, १९१३ को महाराजा का विवाह पंजाब की रियासत फरीदकोट के राजा की छोटी बहन के साथ सम्पन्न हुआ।

सन् १९१४ के प्रथम विश्वयुद्ध में महाराजा इंगलैंड में ही थे। अल्पायु होने पर भी उन्होंने युद्ध में जाने की इच्छा प्रकट की। ब्रिटिश सरकार ने आपकी बहुत प्रशंसा की परन्तु युद्ध में जाने की अनुमति नहीं दी। महाराजा ने भरतपुर की सेना युद्ध में भेजीं और सेना के युद्ध में वीरता की अमिट छाप छोड़ी। इन वीरों की स्मृति में विक्टोरिया होस्पीटल के समीप एक स्मारक बना हुआ है।

महाराजा कृष्णसिह जी का हृदय बहुत उदार था। उन्होंने प्रथम विश्व-युद्ध के समय अंग्रेज सरकार को १५ लाख रु० की आर्थिक मदद की। अनाथ और अपंगों की आपने दिल खोल कर सहायता की। अंग-भंग सैनिकों को पूरा ध्यान रखते थे। वीरगति प्राप्त हुए सैनिकों के परिवारों को भरपूर आर्थिक सहायता दी। प्रजा आपको पिता तुल्य समझती थी।

भरतपुर राज्य का शासन-प्रबन्ध आपने सुचारू रूप से चलाया। राज्य की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ किया। सेना का पुनर्गठन किया। स्वयं सैनिकों का ध्यान रखते थे। उनसे व्यक्तिगत संपर्क रखते थे। जनता में पूर्ण संतोष था। वे कहा करते थे कि सारा राज्य का धन प्रजा का है, इसलिए यह धन प्रजा पर ही लगना चाहिए।

महाराजा श्री कृष्णसिंह ने राज्य में अनेक सुधार किए। गौभक्त होने के कारण नगरों में गौशालाएं स्थापित करवाईं। म्युनिसिपैलिटी की स्थापना करवाई। शासन-व्यवस्था में प्रजा हितार्थ अनेक संशोधन करवाए। महाराजा स्वयं को न्यास का न्यासी समझते थे। आपने राज्य का सर्वांगीण विकास किया।

महाराजा श्रीकृष्णसिंह जी शिक्षा-प्रेमी थे। मेधावी छात्रों को छात्रवृत्तियां दी जाती थीं। हिन्दी का महत्व बढ़ाने के लिए राज्य का कार्य हिन्दी में होने लगा। आपने राज्य में हिन्दी साहित्य सम्मेलन करवाया जिसमें विश्वकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर को भी आमन्त्रित किया गया था। आपने 'भारतवीर' नामक पत्रिका भी प्रकाशित करवानी प्रारम्भ की।

महाराजा ने जनता के कल्याणार्थ सहकारी समितियां और सहकारी बैंक व ग्राम पंचायतों की स्थापना करवाई। ग्रामों में आयुर्वैदिक अस्पताल बनवाए। पशुओं के लिए 'यशवन्त प्रदर्शनी' लगवाई, जो अब भी दशहरे के दिन लगती है। भरतपुर राज्य की विधवाओं की सहायता के लिए एक समिति का निर्माण किया। समस्त राज्य में दूरभाष तथा बिजली का प्रबन्ध करवाया ताकि व्यापार और वाणिज्य की वृद्धि हो।

२४ सितम्बर, १९२२ को राजमाता का देहान्त हो गया, जिससे आपको गहरा आघात लगा। आप रोगग्रस्त हो गए। कुछ

समय पश्चात् आप स्वस्थ हुए तो प्रजा फूली न समाई। सन् १९२८ में जयपुर तथा अलवर राज्य का पानी का बांध टूटने पर भरतपुर में पानी भर गया। आपने धन-जन से आहतों की सहायता प्रदान की।

महाराजा को जाट होने का गर्व था। १९२५ में पुष्कर में जाट महासभा ने आयोजन किया। आपने अध्यक्ष पद ग्रहण किया और कहा, "मुझे इस बात का भारी अभिमान है कि मेरा जन्म जाट क्षत्रिय जाति में हुआ है। हमारे पूर्वजों ने कर्तव्य के पीछे अब तक हमारा सिर ऊंचा है।"

महाराजा श्रीकृष्ण जी अनन्य देशभक्त और समाज-सुधारक थे। केवल भरतपुर की जनता ही नहीं, समस्त जाट जाति इस महान विभूति को स्मरण करती रहेगी।

●
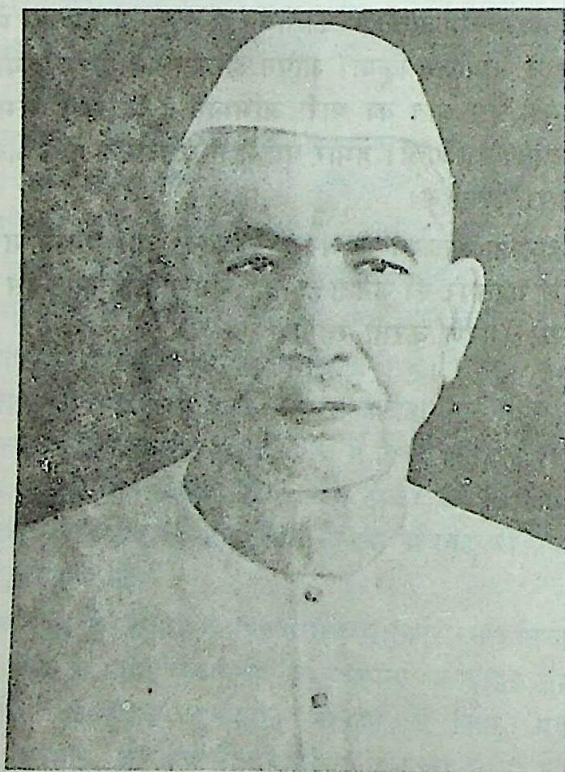
चौधरी चरण सिंह
(१९०२–१९८७ ईस्वी)

इतिहासपुरुष चौधरी चरणसिंह

— डा० नत्थनसिंह

जिस व्यक्ति को अपने देश के साथ लगाव है, जो इस देश की जनता की बहबूदी में रुचि रखता है और जो भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति आस्थावान है, उसका मस्तिष्क चौ० चरणसिंह के नाम के सामने अवश्य झुक जायेगा।

चौ० चरणसिंह के विषय में, जानने के लिए,यह बिल्कुल आवश्यक नहीं कि कहां पैदा हुए थे, उनके पूर्वज (नूरपुर जानी) कहां से चलकर आए थे, पिता भीमसिंह के कितने भाई थे, उनके परिवार के पास कितनी जमीन थी, बचपन में चौधरी साहब कहां पढ़े थे और कहां से उच्च शिक्षा अर्जित की थी, केवल जानना यह आवश्यक है कि छात्र-जीवन में गांधी जी से प्रभावित हुए क्रान्तिकारियों के त्याग, बलिदान और उत्कृष्ट देशभक्ति से अभिभूत हुए, महर्षि दयानन्द की प्रगतिशील धार्मिक विचारधारा को आचरण के रूप में अपनाते गए, सरकारी साधनों के व्यक्तिगत प्रयोग के कट्टर दुश्मन रहे, सरकारी विभागों में खर्च की कमी को व्यावहारिक रूप देते रहे, पूंजीपतियों से चन्दा लेने के पक्ष में कभी नहीं रहे, मार्क्सवादी न होते हुए भी मार्क्स के इस कथन के समर्थक रहे कि पूंजी के साथ प्रभाव भी ग्रहण करना पड़ता है, अतः चुनाव-प्रचार के लिए, धन का अभाव होते हुए भी, मिल मालिकों से चन्दा लेने के विरोधी रहे, सिम्पिल लिविंग और हाई थिंकिंग के साक्षात् अवतार गृहमंत्री के बंगले में भी, एक कमरे में कालीन बिछाकर बैठने तथा सामने छोटी मेज रखकर लिखने के अभ्यस्त थे चौधरी साहब।

इस साधारण रहन-सहन के पीछे क्या विचार तथा उद्देश्य निहित था, यह जानना प्रत्येक देशभक्त के लिए आवश्यक है। वे भली प्रकार जानते थे कि जबतक शब्दों के पीछे कार्य या आचरण का बल नहीं होता, तबतक व्यक्ति के कथन का कोई प्रभाव नहीं होता। यही कारण है कि बचपन से ही उन्होंने स्वयं को कथन और कर्म की एकता तथा आचरण और सिद्धान्त की एकरूपता के लिए तैयार किया था। इस सिद्धान्त पर, वह आज तक टिके हैं। उनके जीवन में अनेक तूफान आए, अनेक उत्थान तथा पतन के झंझावात आए, पर वह हमेशा हिमालय की तरह अचल रहे । वह टूटे इसलिए नहीं कि उनको जनता का बल प्राप्त था।

चौ० चरणसिंह एक गरीब किसान की सन्तान हैं, अतः किसानों और गरीबों से उनका बेहद लगाव रहा है। उनको जब कभी मौका हाथ लगा है, तभी किसानों के हितों के काम करने पर जुट गए। सबसे पहला अवसर उनको प्राप्त हुआ सन् १९२८ में, जब आप गाजियाबाद में वकालत कर रहे थे। किसानों के मुकदमों में फैसले कराना, उनको लड़ाने के लिए प्रेरणा न देना और उनके झगड़ों को आपसी बातचीतों से सुलझा देना आदि उनका किसानहित की दिशा में पहला कदम था। यही कार्य, चौ० छोंटूराम ने पंजाब में करके किसानों को समृद्ध बनाया था।

किसान-हित-सम्पादन का दूसरा अवसर आपको तब मिला, जब वह मेरठ जिला बोर्ड के उपाध्यक्ष तथा अध्यक्ष रहे थे। उस समय ग्रामीण-क्षेत्रों की सड़कों तथा स्कूलों की हालत ठीक कराई, अनुचित भत्ता लेने वाली प्रवृत्ति को हतोत्साहित किया, कार्यालय के बाबूओं को समय पर आने के लिए विवश किया और चपरासियों से निजी काम लेने की आदत को छुड़ाया। सारांश यह है कि इस काम में, किसान तथा आम आदमी का भला करना, कार्य प्रणाली में

ईमानदारी तथा निष्ठाभावना का समावेश करना आपके दो विशेष गुण रहे हैं, जिनके लिए वह हमेशा याद किये जायेंगे।

किसान तथा गरीबों की भलाई करने का तीसरा अवसर आपको उस समय मिला, जब आप बागपत गाजियाबाद क्षेत्र से प्रान्तीय धारा-सभा के लिए सन् १९३७ में चुने गए थे। सन् १९३९ में, आपने ऋण-विमोचक विधेयक पास कराया, जिससे किसानों के खेतों की नीलामी बच गई और सरकार के ऋणों से किसानों को मुक्ति मिली बाद में, चौ० सर छोटूराम ने, पंजाब में ऐसा ही कानून बनाकर लाखों किसानों को लाभ पहुंचाया। सन् १९३९ में आपने किसान-सन्तान को सरकारी नौकरियों से पचास फीसदी आरक्षण दिलाने के पक्ष में लेख लिखा, कांग्रेस दल की बैठकों में प्रस्ताव रखा, लेकिन तथाकथित राष्ट्रवाद्दी कांग्रेसियों के विरोध के कारण, इस उद्देश्य में सफलता नहीं मिली। किन्तु, इस दिशा में उनकी असफलता भी, उनकी जीत है। इससे यही सिद्ध होता है कि वह निरन्तर किसानों के हित में सोचते थे और आज भी सोचते हैं। उनका आर्थिक-दर्शन इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है।

सन् १९३९ में ही, आपने कांग्रेस-विधायक दल के सामने एक प्रस्ताव रखा था कि सरकारी नौकरी के लिए साक्षात्कार के समय हिन्दू उम्मीदवारों से जाति न पूछी जाए, केवल पूछा यह जाए कि वह अनुसूचित जाति का है अथवा नहीं? आपका यह कार्य, इस बात का प्रतीक है कि वह हरिजन तथा अनुसूचित जाति के लोगों की तरक्की के प्रश्न पर केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से नहीं, वरन व्यावहारिक स्तर पर सोचते रहे। हिन्दुओं से ऊंच-नीच के भेद को मिटाने के उद्देश्य से, आपने पं० नेहरू को पत्र लिखे था और इसकी व्यवस्था करने का आग्रह किया था कि सरकारी सेवाओं में प्रवेश की एक शर्त हरिजन कन्या से विवाह करना लगाई जाए।

उत्तर प्रदेश के किसानों को इजाफा-लगान तथा बेदखली के अभिशाप से मुक्त करने के लिए सन् १९३९ में ही आपने 'भूमि उपयोग बिल' का मसौदा तैयार किया। धारा-सभा के सदस्यों में उसे वितरित कराया, सभा में पेश करने का नोटिस भी दिया गया' लेकिन वांछित उद्देश्य की प्राप्ति सन् १९३९ में न होकर सन् १९५२ में हुई जब 'जमींदारी उन्मूलन अधिनियम' पास कराने में सफल हुए थे। जमींदारी उन्मूलन से उत्तर प्रदेश के किसानों को कल्पनातीत लाभ हुआ।

उत्तर प्रदेश में कृषि, परिवहन; वित्त, गृह, सिंचाई तथा बिजली, न्याय तथा सूचना, पशुपालन वन, स्वायत्त, शासन, माल आदि विभागों के मंत्री तथा मुख्यमंत्री के रूप में लोकहित के अनेक ऐसे कार्य किये हैं, नैतिक आचरण के अनेक ऐसे उदाहरण पेश किये हैं, ईमानदारी तथा प्रशासकीय कौशल के बहुत से ऐसे कार्य किये हैं, जिनके लिए उनको इतिहास के पृष्ठों पर हमेशा याद रखा जायेगा।

जब कभी, छात्र-समाज में अनुशासनहीनता को बिना लाठी, गोली के मिटाने का सवाल किस प्रशासक के सामने उठेगा, तब चौधरी साहब को याद किया जायेगा, जब कभी जाति तथा संप्रदाय के आधार पर शिक्षा संस्थाओं ने नामों को मिटाने की बात उठेगी तो आपको ही याद किया जायेगा, जब कभी सरकारी अधिकारियों से रिश्वतखोरी मिटाने का सवाल उठेगा, जब कभी प्रशासन में कमखर्ची और कुशलता लाने की समस्या सामने आयेगी, जब कभी सरकार के सामने देश से गरीबी तथा बेकारी मिटाने की गंभीर समस्या पैदा होगी, तब इनके हलों के लिए चौधरी साहब के व्यक्तित्व, चिंतन की दिशा और नीति की ओर देखना पड़ेगा, इसके बिना समस्याओं के सामाधान नहीं खोजे जा सकते।

आज लोगों को इस कथन में अत्युक्ति दिखाई पड़ सकती है कि चौधरी चरणसिह की आर्थिक नीतियों की अवहेलना करके इस देश का पूंजीवादी विकास तो संभव है, किन्तु समाजवादी विकास संभव नहीं है।

चौधरी साहब कोरे राजनीतिज्ञ नहीं हैं, वे सिद्धान्तवादी भी हैं और उदात्त मानवीय मूल्यों के साथ प्रतिबद्ध भी। यदि वे केवल राजनीतिज्ञ होते तो एकबार मुख्यमंत्री बनने के बाद यावज्जीवन उस आसन पर बने रहते अथवा प्रधानमंत्री होने के बाद, उस आसान को हाथ से न जाने देते। राजनीतिज्ञ पहले अपना हित देखता है, बाद में राष्ट्र या समाज का, किन्तु आदर्शवादी पहले राष्ट्र और समाज का हित देखता है और अपने हितों को उन पर न्योछावर कर देता है। चौधरी साहब ने हमेशा इस देश के गरीबों के लिए अपने हितों को ठोकरें मारी हैं। यह कारण है कि सत्ता तथा पूंजीतंत्र ने, सदैव उनको धराशायी करने का प्रयास किया हैं किन्तु जनता ने उनको अनन्य सम्मान और श्रद्धा समर्पित की है।

चौधरी साहब को ग्रामीण क्षेत्र और ग्रामीण जनता से विशेष लगाव था। आज के युग में, भारत ग्रामीण अंचल परस्पर द्वेष तथा संघर्ष में ग्रसित है, अशिक्षा तथा अनैतिक कार्यों की ओर उन्मुख होता जा रहा है, यहां वर्तमान शिक्षा संस्थाएं छात्रों को कम्पटीटिव परीक्षाओं में सफल होने के योग्य न बनाकर, उनको निम्नश्रेणी का नागरिक बना रही है, एक प्रकार की शिथिलता था दायित्वहीनता से ग्रामीण-तंत्र आक्रांत है। अतः आवश्यकता है कि हमारे समाज में चौ० चरणसिंह जी जैसे निष्ठावान व्यक्ति पैदा हों। किसानों की समृद्धि का जो कार्य उन्होंने प्रारम्भ किया था, उसको पूर्णता की ओर ले जायें।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि समाज और राष्ट्रों का निर्माण राजनीतिज्ञों से नहीं होता। यह कार्य पूरा होता है निष्ठावान् विचारकों के आदर्श आचरणों से।

आज के युग की आवश्यकता निष्ठावान् नागरिक पैदा करने की है। आइए, हम सब लोग निष्ठावान्, समाज सापेक्ष और कर्त्तव्य परायण नागरिक पैदा करने पर जुट जायें और ग्रामीण अंचल की शिक्षा-संस्थाओं को इस शिक्षा की ओर मोड़ दें।

●

शहीद शिरोमणि सरदार भगतसिंह

शहीद भगतसिंह के पूर्वजों में से शायद ही कोई सदस्य बचा हो, जिसने भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में भाग न लिया हो। उनके पिता सरदार किशनसिंह बड़े धैर्यवान थे परन्तु पुलिस से बच कर नेपाल चले गए थे। उनके दोनों चाचा सरदार अजीतसिंह और सरदार सुवर्णसिंह ने क्रान्तिकारी आन्दोलन में हिस्सा लिया। सरदार अजीतसिंह को तो माण्डला जेल में भी भेजा जा चुका था। २८ सितम्बर, १९०७ को लायलपुर जिले के बंगा नामक ग्राम में भगतसिंह का जन्म हुआ था। कहा जाता है कि इसी दिन भगतसिंह के पिता जी और दोनों चाचा भी निष्कासन की अवधि समाप्त करके घर लौटे। इस दिन को भाग्यशाली माना गया और बच्चे को भी **'भागां वाला'** माना गया। दादी ने बच्चे का नाम भगतसिंह रख दिया।

बंगा के प्राईमरी स्कूल में भगतसिंह की प्रारम्भिक शिक्षा हुई। उनका लेख बहुत सुन्दर था। अध्यापकों को सम्मान देते थे। पांचवीं कक्षा तक पहुंचते ही उन्होंने अपने परिवार की क्रान्तिकारी गतिविधियों तथा अन्य क्रान्तिकारियो के विषय में काफी कुछ जान लिया था। उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा डी० ए० वी० स्कूल, लाहौर से पास की। विद्यालय की शिक्षा समाप्त करने के बाद नेशनल कालेज में दाखिला लिया। यही उनका परिचय सुखदेव, भगवतीचरण, यशपाल, व अन्य क्रान्तिकारियों से हुआ। कालेज में श्री जयचन्द विद्यालंकार नामक प्राध्यापक का प्रभाव उन पर काफी पड़ा। क्रान्तिकारी मन्मथनाथ गुप्त लिखते हैं– ''जयचन्द्र हिन्दू विचारों के थे, पर क्रान्ति का प्रचार करते थे। कुछ भी हो, इन्हीं के जरिये से
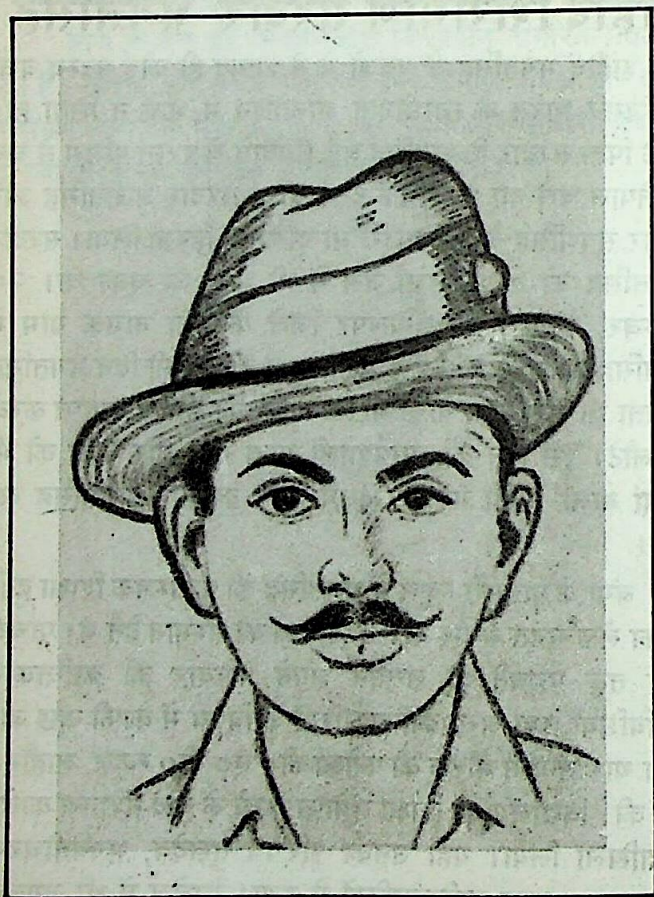
शहीद शिरोमणि सरदार भगतसिंह
(१९०७–१९३१ ईस्वी)

भगतसिंह और उनकी मित्र मंडली का प्रवेश क्रान्तिकारी दल में हो

गया। गुरु गुड़ ही रह गए और चेले चीनी हो गए। जयचन्द का एक प्रभाव फिर भी इन लोगों पर यह रह गया कि सबके-सब विद्याप्रेमी हुए। यद्यपि भगतसिंह सिख परिवार में पैदा हुए थे, पर उन्होंने हिन्दी भी सीख ली और हिन्दी में लिखने लगे।''

भगतसिंह ने एफ० ए० की परीक्षा पास कर ली तो परिवार वालों ने उनके विवाह की तैयारी शुरू दी। भगतसिंह के मन में तो भारतमाता को स्वतंत्र कराने की तड़प थी। उन्होंने विवाह के लिए मना कर दिया और घर से भाग निकले। घर त्यागने से पहले उन्होंने पिता जी को निम्नलिखित पत्र लिखा—

पूज्य पिता जी, नमस्ते।

मेरी जिन्दगी मकसदे आला यानी आजादी-ए-हिन्द के उसूल के लिए वक्फ हो चुकी है। इसीलिए मेरी जिन्दगी में आराम और दुनियाबी ख्वाहशात वायसे कशिश नहीं है।

आपको याद होगा कि जब मैं छोटा था तो बापू जी ने मेरे यज्ञोपवीत के वक्त ऐलान किया था कि मुझे खिदमते वतन के लिए वक्फ कर दिया गया है। लिहाजा मैं उस वक्त की प्रतिज्ञा पूरी कर रहा हूं। उम्मीद है आप मुझे माफ फरमायेंगे।

आपका तावेदार भगतसिंह

दिल्ली में भगतसिंह 'अर्जुन' नामक पत्र में कार्य करने लगे। कुछ दिन पश्चात् कानपुर चले गए और क्रान्तिकारी **गणेश शंकर विद्यार्थी** के पत्र 'प्रताप' के संपादकीय विभाग में कार्य किया। वे उस समय बलवन्तसिंह के नाम से लिखते थे और इसी नाम से विख्यात थे। गणेश शंकर विद्यार्थी ने भगतसिंह को योगेश चन्द्र चटर्जी के क्रान्तिकारी संगठन का सदस्य बना दिया। इसी दौरान उन्हें अपनी माता जी की बीमारी का पता चला तो वे लाहौर चले गए। इन्हीं

दिनों बंगाल में गोपीमोहन शाह एक अंग्रेज को मारकर शहीद हो
गए। भगतसिंह ने शहीद की स्मृति में जनसभा का आयोजन किया और क्रान्तिकारियों का जोरदार पक्ष लिया और कहा– "प्रत्येक गुलाम जाति को अधिकार है कि वह जिस भी प्रकार चाहे और जिस भी प्रकार संभव हो, अपनी गुलामी की जंजीर को तोड़ डाले।" अंग्रेज बौखला गए और राजद्रोह का मुकदमा चलाना चाहा किन्तु सफलता नहीं मिली। उन्होंने नवयुवकों को संगठित किया और 'नौजवान भारत सभा' नामक एक संस्था की स्थापना कर दी।

नौजवान सभा ने सन् १९२६ में भारत के लिए पूर्ण स्वाधीनता की मांग रखी दी। ९ सितम्बर १९२९ को दिल्ली के फिरोजशाह कोटला में क्रान्तिकारियों ने एक गुप्त सभा की। भगतसिंह की क्रान्तिकारियों से सम्पर्क करने का कार्य सौंपा गया। दल का नाम रखा गया– **'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोशियशन'**। उत्तर प्रदेश में भी शाखएं स्थापित करने का निर्णय लिया गया। क्रान्तिकारियों की गतिविधियां तेज हो गई। श्री मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार, "दल की ओर से उत्तर भारत में कई जगह बम के कारखाने खोले गए, साथ ही नौजवान भारत सभाओं की भी स्थापना हुई। यदि क्रान्तिकारी दल पर सरकार का उस प्रकार से प्रहार न होता, जिस प्रकार कि आगे चलकर हुआ, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि नौजवान भारत सभा कांग्रेस से अधिक शक्तिशाली और जनप्रिय हो जाती।"

२० अक्टूबर, १९२८ को साइमन कमीशन लाहौर आया। इस कमीशन का उद्देश्य यह जानना था कि भारतीयों को क्या अधिकार दिये जाएं। सो भारत का कोना-कोना 'साइमन कमीशन' वापिस जाओ के नारों से गूंज रहा था। लाहौर में लाला लाजपतराय के नेतृत्व में जलूस निकला। भीड़ बेकाबू थी। अंग्रेज सहायक

पुलिस अधीक्षक सांडर्स ने बेरहमी से लाला जी और भीड़ पर लाठी चार्ज कराया। लाला जी को गम्भीर चोटें आईं और १७ नवम्बर, १९२८ को उनका देहान्त हो गया। सारे भारत में कोहराम मच गया। भगतसिंह और उनके साथियों ने प्रतिज्ञा कर ली कि वे सांडर्स का वध अवश्य करेंगे।

सांडर्स का वध करने के लिए चन्द्रशेखर आजाद, सरदार भगतसिंह, राजगुरु और जयगोपाल की नियुक्ति की गई। क्रान्तिकारियों का विचार था कि यदि लाला जी की हत्या का बदला नहीं लिया गया तो साइमन कमीशन के बायकाट से जो जोश उत्पन्न हुआ था, वह ठण्डा हो जाएगा। क्रान्तिकारी अंग्रेज अफसर सांडर्स की टोह में रहने लगे। १५ दिसम्बर को सांडर्स ने मोटर साइकिल स्टार्ट करने के लिए हैण्डल घुमाया ही था कि राजगुरु ने एक ही फायर से सांडर्स को वहीं ढेर कर दिया। भगतसिंह, राजगुरु, आजाद इत्यादि भाग खड़े हुए।

सांडर्स की हत्या ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती थी। समस्त भारत की जनता में खुशी की लहर दौड़ गई। नगर की नाकेबन्दी कर दी गई। सरदार भगतसिंह ने दाढ़ी-मूंछ कटवाई और सरकारी उच्चाधिकारी के वस्त्र पहनकर भगवतीचरण की पत्नी दुर्गा भाभी को पत्नी बनाया और बच्चे को गोदी में लेकर कलकता की ट्रेन में बैठ गये। इस समय राजगुरु भगतसिंह के अरदली बने हुए थे। चन्द्रशेखर आजाद ने साधुओं की मंडली तैयार की और चुपके से निकल गए। इस तरह पुलिस की आंखों में धूल झोंक कर क्रान्तिवीर बच निकले।

अब क्रान्तिवीरों ने ब्रिटिश सरकार को चेतावनी देने का विचार किया। श्री मन्मथनाथ गुप्ता लिखते हैं– "....इस समय तो परिस्थिति ऐसी थी कि राष्ट्रीय यज्ञ जारी था और वह आहुति मांग

रहा था। आहुतियां तो बहुत हो चुकी थीं, पर इस आहुति के साथ-साथ बहरों को सुनाने के लिए धड़ाके के साथ बीजमंत्र देने की जरूरत थी, ऐसा मंत्र जो कान में पड़कर शाखा प्रशाखा फैलाकर नस-नस में रक्त कण में लामिया के रूप में फैल जाए। यह बीजमंत्र था— **इन्कालाब जिन्दाबाद** और उसके साथ-साथ, समाजवाद का ध्येय।". भगतसिंह ने जनता का ध्यान क्रान्ति की ओर आकर्षित करने के लिए असेम्बली में बम फैंकने का निर्णय लिया। पार्टी ने निश्चय किया कि वे बटुकेश्वर दत्त के साथ जाकर बम फैंके और चन्द्रशेखर आजाद उन्हें जाकर छुड़ाए। भगतसिंह को उनकी बात पसन्द नहीं आई और कहा— "इस समय राष्ट्र को हमारे बलिदान की आवश्यकता है, इसलिए हमें ऐसी कोई शरारतपूर्ण कार्य नहीं करना चाहिए।" उनका तात्पर्य था कि बम तो फैंका जाए परन्तु वहां से न तो भागा जाए और न ही किसी के द्वारा छुड़ाया जाए क्योंकि इससे हमारी छवि धूमिल हो जाएगी। भगतसिंह बुटकेश्वर दत्त के साथ असेम्बली में बमं फैंकेंगें,यह तय हो गया और शेष क्रान्तिकारी दिल्ली से बाहर चले गए।

८ अप्रैल, १९२९ को केन्द्रीय असेम्बली का अधिवेशन हो रहा था। उसमें जनता की भलाई और मजदूरों की भलाई संबंधी तथाकथित दो बिल विचारार्थ थे। **'इन्कलाब जिन्दाबाद'** के नारे के साथ बम फैंका गया। सदन में भगदड़ मच गई। सारी जगह धुआं छा गया। यदि वे चाहते तो भाग सकते थे। क्रान्तिवीर भागे नहीं, उन्होंने भरा पिस्तौल निकाल कर डेस्क पर रख दिया और वहीं खड़े रहे। काफी देर बाद सार्जेण्ट टेरी और इन्स्पेक्टर जानसन उसके पास आए और गिरफ्तार कर लिया। २२ अप्रैल, १९२९ को उन्हें जेल भेज दिया गया।

बम फैंकते समय दोनों वीरों ने **'फिलासफी ऑफ बम्ब'** नाम

के पर्चे भी फैंके थे, जिनमें '**इन्कलाब जिन्दाबाद**' और '**साम्राज्यवाद का नाश हो**' के नारे थे। इन पर्चों में स्पष्ट लिखा था कि भारतीय क्रान्तिकारी दल का उद्देश्य समाजवाद की स्थापना है और हमारा नारा है– '**इन्कलाब जिन्दाबाद**'।

३ मई, १९२९ को भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह बैरिस्टर आसफ अली के साथ दिल्ली की जेल में मिले। भगत सिंह ने बचाव के लिए पिता को विनम्रता से इन्कार कर दिया। ४ जून, १९२९ को सेशन अदालत में सुनाई आरम्भ हुई। १२ जून, १९२९ को जज ने दोनों क्रान्तिकारियों को आजन्म क़ारावास की सजा सुनाई थी। भगतसिंह को लाहौर सैन्ट्रल जेल तथा बटुकेश्वर दत्त को मियांवाली जेल भेज गया।

सजा वाले दिन समस्त भारत में दोनों क्रान्तिकारियों का नाम प्रसिद्ध हो गया। देशवासियों में उनके सिद्धान्तों के प्रति सहानुभूति पैदा हो गई। ब्रिटिश साम्राज्य को यह सब कुछ पसन्द न था। भगतसिंह ने जेल में भूख हड़ताल प्रारम्भ कर दी। २ सितम्बर, १९२९ को उनकी भूख हड़ताल का ८१ वां दिन था। सरकार परेशान थी। अन्त में ५ अक्टूबर, १९२९ को १२४ वें दिन अनशन समाप्त हुआ। जिस समय भगत सिंह को अदालत में लाया जाता तो वे स्ट्रेचर पर दुआ करते थे और हाथों में हथकड़ी। वे '**इन्कलाब जिन्दाबाद**' का नारा अवश्य लगाते थे और क्रान्तिकारियों शहीदों का प्रसिद्ध गीत गुनगुनाते–

"सर-फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना बाजु-ए- कातिल में है।
वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आसमां,
हम अभी से क्या बताएं क्या हमारे दिल में है।"

भगतसिंह को अपना जीवन प्रिय नहीं था। उन्हें प्रिय थे अपने

सिद्धान्त। जिनके कारण वे शहीद हुए। उन्हें ज्ञात था कि मौत की सजा या आजन्म कारावास की तलवार उनके सिर पर लटकी हुई है, फिर भी अदालत में वे खिलखिलाते रहते थे। उन्हें तरह-तरह की अमानुषिक यातनाएं दी गईं। ४ फरवरी, १९३० को पुनः भूख हड़ताल प्रारम्भ कर दी और मजिस्ट्रेट की अपनी मांगों का ब्यौरा दिया वे चाहते थे समस्त देशवासियों में स्वाधीनता की भावना जाग्रत हो जाए। उन्होंने जेल से अपने मित्र को एक पत्र लिखा। "मैं चाहता हूं कि हमारी मुक्ति की मांग देशव्यापी हो, और मैं यह भी चाहता हूं कि इस आन्दोलन के जुर्म में हमें फांसी पर चढ़ा दिया जाए।" अपने अनुज सरदार कुलतारसिंह को भी फांसी से पूर्व एक पत्र लिखा था, "प्यारे बन्धु। मेरे जीवन का अवसान समीप है। प्रातःकालीन प्रदीप की ज्योति के समान टिमटिमाता हुआ मेरा जीवन प्रदीप उषा के प्रकाश में विलीन हो जाएगा, किन्तु हमारा आदर्श, हमारे विचार और हमारा देश-प्रेम विद्युत की कौंध के समान सारे संसार में जागृति उत्पन्न कर देगा।"

अन्त में ७ अक्टूबर १९३० को सेवेरे फैसला सुनाया गया। भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी, ७ क्रान्तिकारियों को कालापानी। फांसी की सजा रद्द करने के लिए सारे देश में हड़ताल आन्दोलन और प्रदर्शन हुए। सरदार किशनसिंह जी की अपील थी, खारिज हो गई। भगतसिंह से जब उनकी अन्तिम इच्छा पूछी गई तो उत्तर था— "**फिर जन्म लूं और मातृभूमि की अधिक सेवा कर सकूं।** मैं कैद होकर या पाबन्द होकर जिन्दा रहना नहीं चाहता। मेरा नाम हिन्दुस्तानी इन्कलाब पार्टी का निशान बन चुका है, और इन्कालाब पार्टी के आदर्शों और बलिदानों ने मुझे बहुत ऊंचा कर दिया है।"

सरदार भगतसिंह निडर थे। उन्होंने अन्तिम समय तक साहस

का परिचय दिया। फांसी के समय उनकी उम्र केवल २३ वर्ष थी। उन्होंने अपने छोटे भाई को एक पत्र में निम्नलिखित शेर लिखे थे–

''उसे फिक्र है हरदम नया तर्जे-जफा क्या है,
हमें शौक है देखें तो। सितम का इन्तहां क्या है।
घर से क्यों खफा रहें खर्च का क्यों गिला करें,
सारा जहां अदू सही, आओ मुकाबला करें।
कोई दम का मेहमां हूं ऐ अहले महफिल,
चिराग-हरस हूं, बुझा चाहता हूं।
मेरी हवा में रहेगी ख्याल की बिजली,
यह मुश्ते-ख़ाक है फानी रहे या न रहे।

जेल अधिकारी ने उनकी कोठरी का दरवाजा खोला और कहा– ''फांसी का हुक्म आ गया है, तैयार हो जाएं।'' भगत ने जेल अधिकारी की तरफ देखा तक नहीं और हंस कर कहा – ''थोड़ी देर ठहर जाओ। एक क्रांतिकारी, दूसरे क्रान्तिकारी से मिलने जा रहा है। तुम जब तक फांसी की रस्सियों को तनिक मजबूत कर लो। कहीं ऐसा न हो कि इस शुभ घड़ी में ये ढीली पड़ जाएं।'' भगतसिंह ने कुछ पन्ने पढ़े और उसके बाद पुस्तक छत की तरफ उछाल दी और जोर से कहा– ''चलो''। यह पुस्तक वकील प्राणनाथ मेहता की दी हुई लेनिन की जीवनी थी।

सरदार भगतसिंह काल कोठरी से बाहर आए। उधर से राजगुरु और सुखदेव भी आए। तीनों ने आंखों ही आंखों में बातें की और फिर मुस्कराए। तीनों ने मस्ती में गीत गाये और फांसी घर की ओर पुलिस पहरे में चल दिए। उस समय फांसी घर में लाहौर का डिप्टी कमिश्नर उपस्थित था। तीनों वीरों ने '**इंकलाब जिन्दाबाद, साम्राज्यवाद मुर्दाबाद** कहा और फांसी के फन्दों को चूमा और गले में डाल लिए। शाम के ७ बज कर ३३ मिनट पर तीनों वीर शहीद हो गए।

२३ मार्च, १९३१ का यह दिन 'विजय पर्व' का दिन था। जेल

नियमों के अनुसार फांसी का समय प्रात:काल है पर भगतसिंह और उसके साथियों को रात के अंधेरे में ही फांसी दे दी गई। सरकार इतनी भयभीत थी उनके संबंधियों तक से न मिलने दिया और चुपचाप सतलुज के तट पर उनका दाह संस्कार कर दिया। चुपके से भस्मावशेष भी सतलुज की धारा में प्रवाहित कर दी। सारा भारत ब्रिटिश सरकार इस जघन्य कार्यवाही से विस्मित रह गया। पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा– ".... यह हमारे लिए कितने खेद और लज्जा की बात है कि हम सब मिलकर भी उन्हें नहीं बचा सके। वे हमारे प्रिय थे। उनका त्याग तथा साहस भारत के नवयुवकों के लिए सदा प्रेरणादायक रहा,और हैं। हमारी इस असहायता और विवशता पर देश के दु:ख प्रकट किया जाएगा, किन्तु साथ ही हमारे देश को इन स्वर्गीय आत्माओं पर गर्व है।"

●

जननायक राजा मानसिंह

२१ फरवरी, १९८५ को राजा मानसिंह डीग की अनाज मंडी में पुलिस के साथ मुठभेड़ में मारे गए। उनकी मृत्यु का दुखद समाचार सुनकर कुंवर पुष्करसिंह ने कहा– "वीर गढ़े नहीं जाते, जन्मजात पैदा होते हैं। वीर 'शहीद' होने के लिए जिया करते हैं, किन्तु संत्रास यह है कि उस निहत्थे शरीर की हत्या कायरों के हाथों हुई। वेतनभोगी उस गुलाम के हाथ से जो विवेकहीन जातिय विद्वेष से पीड़ित था। वह गया तो सारी कौम के मस्तिक पर अपनी शहादत का तिलक चिन्ह लगा कर उसे अमर गौरव भेंट कर गया।"

राजा मानसिंह ने आनबान के लिए वीरगति प्राप्त करके अपने पूर्वजों जैसा ही यश प्राप्त किया। उनका जन्म भरतपुर महाराजा श्री कृष्णसिंह जी के राजमहल में ५ दिसम्बर, १९२१ को हुआ। उनकी मांता का नाम महारानी राजेन्द्र कौर था। वे भरतपुर नरेश के तीसरे पुत्र थे। आपका विवाह ९ मार्च, १९४५ को कोल्हापुर की राजकुमारी अजयकौर से हुआ था।

राजकुमार मानसिंह १९३० में शिक्षा के लिए इंगलैंड गए। उन्होंने मेलबोर्न पब्लिक स्कूल लन्दन से प्रारम्भिक शिक्षा पाई। लफबरा इंजीनियरिंग टेक्नीकल कालेज से मैकेनिकल इंजीनियरिंग की डिग्री पाई। इसके पश्चात् आपने द्वितीय विश्व युद्ध में ब्रिटिश सेना में सैकिण्ड रॉयल लांसर्स में ५ वर्ष कार्य किया। युद्ध समाप्ति पर आप भारत लौटे और भारतीय सेना में मेजर का पद संभाला।

सन् १९४५ में अपने अग्रज महाराजा ब्रजेन्द्र सिंह की इच्छानुसार आपने सेना का पद त्याग दिया और भरतपुर आ गए। १९४६-४७ में आप भरतपुर मंत्रिमंडल में मंत्री पद पर रहे।
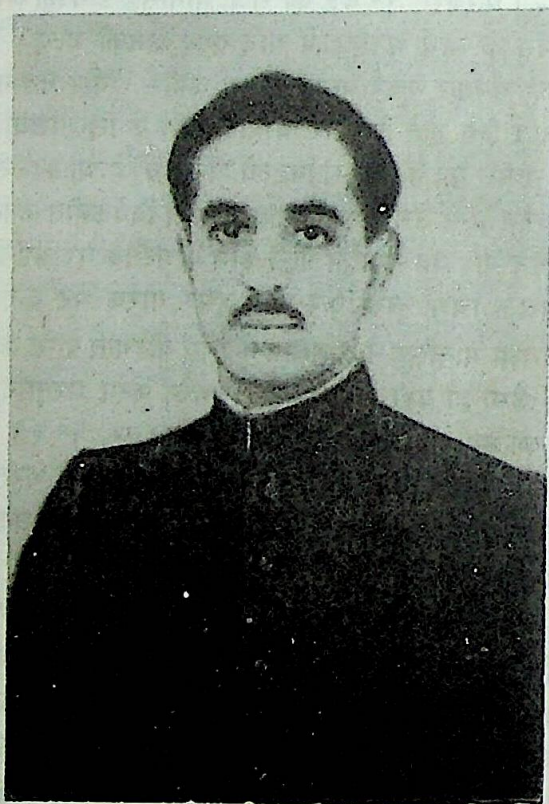
युवा राजा मान सिंह
(१९२१–१९८५ ईस्वी)

१९५७ में आपने मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया। इस अवधि में आप भरतपुर में वन्य जीव एवं वन्य पशु संरक्षक मंडल के सदस्य, भ्रष्टाचार विरोधी मंडल के सदस्य. प्रशासनिक , सुधार समिति के सदस्य रहे। जनवरी १९५२ से २१ फरवरी, १९८५ तक आप राजस्थान विधान सभा के सदस्य रहे। आपके पश्चात् आपकी सुयोग्य पुत्री रूपादेवी आपके निर्वाचन क्षेत्र से निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में विधानसभा में पहुंची। राजस्थान में केवल आपको ही आजीवन विधायक रहने का गौरव प्राप्त है।

देश की आजादी के बाद भरतपुर किले पर परम्परागत झण्डे को उतारने का आपने कड़ा विरोध किया। जन-आदोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। १८ मार्च, १९४८ को भारत सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और छः मास तक दिल्ली की तिहाड़ जेल में रखा गया। अन्ततः समझौता हुआ कि किले पर राष्ट्रीय ध्वज और परम्परागत ध्वज दोनों ही फहराते रहेंगे।

स्वाभिमानी राजा जी कि गिरफ्तारी के पश्चात् डीग पंचायत समिति के प्रधान श्री कुंवरसेन जी और कुंवर पुष्करसिंह जी वृन्दावन में महाराजां महेन्द्र प्रताप जी के पास राजा जी गिरफ्तारी का समाचार लेकर गए। महाराजा ने अति प्रसन्न होकर कहा, "महाराज किशनसिंह जी की सन्तानों में से कोई पिता की तरह तेजस्वी निकला तो सही। वह एक असाधारण व्यक्तित्व बनकर उभरा है। उससे हमें बहुत आशायें हैं। मैं उस पर गर्व करता हूं। मानसिंह स्वयं ही एक जन-आन्दोलन है। वह भरतपुर शीघ्र ही आयेगा और कुन्दन बन कर जायेगा।"

१९८५ में राजा मानसिंह डीग क्षेत्र से निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में चुनाव लड़ रहे थे। विरोधियों ने उनके भण्डे और बैनर फाड़ दिए। राजा जी के स्वाभिमान और सम्मान की यह एक चुनौती थी।

उन्होंने भी इसके जवाब में विरोधी दल के नेता राजस्थान के मुख्यमंत्री शिवचरण माथुर के मंच और हैलीकॉप्टर को २० फरवरी, १९८५ को अपनी जीप से टक्कर मार-मार तोड़ दिया। दूसरे दिन सरे आम डीग की अनाज मंडी में पुलिस ने उन पर हमला कर हत्या कर दी। जीप में अन्य दो साथी भी मारे गए।

राजा मानसिंह स्वतंत्र विचार वाले व्यक्तित्व के धनी थे किन्तु जाट सभाओं में जाना गौरव की बात मानते थे। उन्होंने एक बार आगरा में हुए जाट सम्मेलन में मुख्य अतिथि के पद से बोलते हुए कहा था– "मुझे जाट जाति में पैदा होने का गर्व है। प्रत्येक वर्ग की एक बिरादरी होती है। जानवरों तक में बिरादरी होती है, तो इस बिरादरी से जाट ही कैसे अलग रह सकते हैं। ब्रज क्षेत्र के लोगों ने मेरे खानदान पर भरोसा किया है, दायित्व सौंपा है,मैं उस दायित्व का निर्वहन अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी करता रहूंगा।"

राजा मानसिंह स्वभाव से स्वाभिमानी, निर्भीक और सच्चे किसान थे। राजवंशी और विधायक होते हुए भी कृषि कार्य अपने हाथ से करते थे। उनका जीवन सादगी पूर्ण था। उनके व्यक्तित्व के विषय में रामवीरसिंह लिखते हैं– "राजा मानसिंह किसानों में राजा और राजाओं में किसान थे। उनके व्यक्तित्व का यही पक्ष, राजाओं के बीच में, उनकी अपनी महत्वपूर्ण पहचान बनाता था, जिसके सामने बड़े-बड़ों की वाणी मूक हो जाया करती थी और उनका यही व्यक्तित्व भोले-भाले किसानों के बीच, एक गरिमामय किसान के रूप में उनको प्रतिष्ठा दिलाता था। उनमें किसानों की सी सादगी, संवदेनशीलता, परिश्रम प्रियता, भाईचारे की भावना, सबके साथ समानता का व्यवहार करने की आदत और राजाओं की सी उदारता के साथ ही मितव्ययिता, वचनबद्धता तथा ऊंची नजर थी। राजा साहब कठिन परिश्रमी युग-पुरुष थे। उनकी कोठी में खुद की

प्रयोगशाला थी, जिसमें वह अपने जूतों तथा कपड़ों से लेकर ट्रैक्टर तथा बन्दूक आदि की स्वयं मरम्मत किया करते थे। खुरपा, फावड़ा तथा कृषि उपकरण वे स्वयं ही बनाते और ठीक करते थे। वे एक साथ किसान भी थे और इंजीनियर भी, राजा भी थे और साधारण मजदूर भी, जरूरतमंदों की सहायता करना उनका ऐसा स्वभाव था, जिसने उनको लोकप्रियता की बुलन्दी पर पहुंचा दिया।"

सभी प्रकार का वैदिक साहित्य प्राप्त करें

वैदिक विवाह संस्कार विधि (श्री महेन्द्र कुमार शास्त्री) १५)
वैदिक नित्य कर्म विधि (बड़ी) (श्री पं० हरिदेव आर्य, एम. ए.) २२)
वैदिक सत्संग पद्धति (,, ,,) ६)
वैदिक संस्कार रहस्य (प्रथम भाग) (श्री आनन्दमुनि वानप्रस्थ) १५)
वैदिक संस्कार रहस्य (द्वितीय भाग) (,, ,,) २५)

जीवनियां

तड़प वाले: तड़पाती हैं जिनकी कहानियां I (प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु') १८)
तड़प वाले: तड़पाती हैं जिनकी कहानियां II (,, ,,) ३०)
व्यक्ति से व्यक्तित्व (गंगा प्रसाद उपाध्याय) (,, ,,) २०)
लाला लाजपतराय (,, ,,) ३०)
स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती (बड़ी) (,, ,,) ३०)
वीर हकीकत राय (प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु') ५)
पं० गुरुदत्त विद्यार्थी (,, ,,) १५)
स्वामी सर्वानन्द जी की जीवनी (,, ,,) २०)
आर्यमुसाफिर पं० लेखराम की जीवनी (प्रो० राजेन्द्र 'जिज्ञासु') ५०)
योगेश्वर कृष्ण (श्री पं० चमूपति, एम. ए.) ४०)
राम प्रसारद बिस्मिल (श्री राजपाल सिंह शास्त्री) १४)
स्वामी श्रद्धानन्द (पं० हरिदेव आर्य, एम. ए.) २०)
महर्षि दयानन्द (बालोपयोगी) (श्री रामेश्वर शास्त्री) ५)
स्वामी विरजानन्द (श्री स्वामी वेदानन्द तीर्थ) १५)
जीवनी दर्शनानन्द सरस्वती (श्री डॉ० भवानीलाल भारतीय) २)५०
राजस्थान के आर्य महापुरुष (,, ,,) १५)
श्री लालबहादुर शास्त्री (श्री परमेश शर्मा) १५)
चौ० चरण सिंह (श्री परमेश शर्मा) १४)
दीनबन्धु सर छोटूराम (श्री महेन्द्रकुमार शास्त्री) १०)

मधुर-प्रकाशन
२८०४, गली आर्यसमाज, बाजार सीताराम, दिल्ली-११०००६
फोन: ३२६८२३१, ५१३२०६
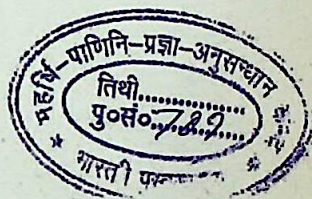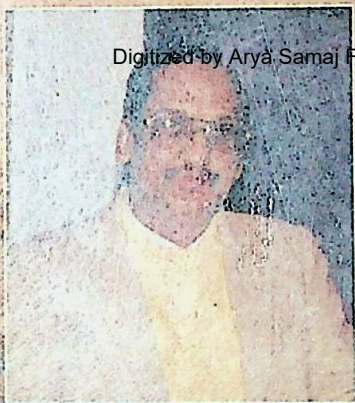
श्री सुखबीर सिंह दलाल

होटल वन्दना
47, आरकशाँ रोड,
पहाड़गंज, रामनगर
नई दिल्ली-55

जन्म : हरियाणा राज्य के रोहतक जिले के 'मातन' गांव में 6 सितम्बर, 1946 को जन्म हुआ।

शिक्षा : बी. ए. (दिल्ली विश्वविद्यालय), एम. ए. (हिन्दी), मेरठ विश्वविद्यालय, बी. एड., (पंजाब विश्वविद्यालय तथा पत्रकारिता में डिप्लोमा, भारतीय पत्रकारिता विद्यापीठ (हिन्दी भवन) कनॉट सर्कस, नई दिल्ली।

साहित्य सेवा : बाल्यकाल से ही आर्यसमाज तथा जाट समाज के लिए समर्पित। निरन्तर स्वाध्यायशील व शोध कार्यों में संलग्न। जून 1970 से अगस्त 1973 तक आप 'मानव-वन्दना' हिन्दी मासिक पत्रिका के सम्पादक व प्रकाशक रहे। आपने कई पत्रिकाओं में सम्पादन सहयोगी के रूप में कार्य किया। भारत की विभिन्न पत्रिकाओं में आपके लेख प्रकाशित हो चुके हैं। आपके प्रिय विषय - धर्म, संस्कृति, साहित्य और समाज रहे हैं। 5 सितम्बर 1990 के दिल्ली के उपराज्यपाल ने शिक्षा व सामाजिक कार्यों में उल्लेखनीय योगदान के लिए दिल्ली राज्य के राजकीय पुरस्कार से सम्मानित किया।